ओर देखा पर हाय ! वहाँ पर कोई नहीं था। वीरेन्द्र रोगीकी तरह रात भर करवटें बदलता रहा।

*   *   *

केदार दूसरे दिन सवेरे उठा। उसने सोचा कल शायद किसी घटनासे वीरेन्द्रका चित्त उदास था। इसीलिये वह भी खुलकर नहीं बोलता था और मैं भी उससे विशेष अनुरोध नहीं कर सका। उसको अभी भी विश्वास था कि वीरेन्द्र उसके अनुरोधको नहीं टाल सकता। इसलिये उसने आज फिर कहनेका बिचार किया। वह उठा और वीरेन्द्रकी चारपाईके पास जाकर बोला—धन्य भाई तुम्हारी नींदको। अब उठते नहीं !

वीरेन्द्र कुछ न बोला। चुपचाप उठ बैठा। उसकी आंखें स्पष्टतया बतला रही थीं कि उसे रातको नींद नहीं आई है। दोनों नित्य-कर्मसे निवृत्त होकर चाय पीने बैठे। इस समय केदारने अपना अभिप्राय जतानेका अच्छा अवसर देखकर कहा—क्यों वीरेन्द्र ! आज किस गाड़ीसे चलोगे ?

बीरेन्द्रने बिना कोई सोच विचारके तुरन्त कह दिया—मैं तो आज नहीं जा सकता।

वीरेन्द्रके इस रूखे उत्तरसे केदारका चेहरा उतर गया। अपमान के इस हल्के चपेटेंने उसके हृदयमें एक पीड़ा उत्पन्न कर दी, वह आगे कुछ न बोला। वास्तवमें मनुष्य कितना ही सहनशील क्यों न हो, किन्तु अपमानकी हल्कीसे हल्की चोट भी सहना विवेकशील मनुष्यके लिये अत्यन्त कठिन हो जाती है। वह अब ज्यादा देर उस

स्थान पर बैठा नहीं रह सका। चुपचाप उठकर चला गया। वीरेन्द्र अपने ही ध्यानमें मग्न था। उसको इस बातकी जैसे तनिक भी पर्वाह न हुई। वह अपने स्थान पर डटा रहा।

केदार अपने आप ग्लानिसे डूबा जा रहा था। रह-रह कर पिछली घटनायें उसके हृदयमें बार-बार याद आने लगीं। वह सोचने लगा, ओह यह क्या हुआ? वह वीरेन्द्र जो उसके संकेत पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करनेपर सदा उद्यत रहता था, आज इतना साधारण अनुरोध भी माननेको तैयार नहीं है! प्रभो, इतनी जल्दी, यह काया-पलट क्यों हुई। मैंने तो उससे कोई ऐसी बात नहीं कही। फिर वह क्यों इतना उदासीन हो गया। फिर विचार आया एक बार इस उदासीनताका कारण पूछूं। किन्तु हृदयका बरबस दबाया हुआ स्वाभिमान जाग कर रास्तेमें खड़ा हो जाता था।

वीरेन्द्रको सुशीला की निर्दय याद सता रही थी। वह इसी प्रतीक्षामें था कि कब रात हो और कब मैं सुशीलाके घर जाऊं। वह कभी सोचता, सुनते हैं वेश्यायें जादू भी चलाती हैं क्या मुझपर सुशीलाने कोई जादू तो नहीं कर दिया। फिर अपने विचारका स्वयं ही खण्डन करने लगता। नहीं, सुशीला ऐसी नहीं है उसको यों व्यर्थ दोषी बतलाना मेरा अन्याय है। क्या सद्व्यवहार, मिष्ट भाषण और प्रेम एक प्रकारका जादू नहीं है? वास्तवमे इसी जादूसे सुशीलाने मुझे अपना बना लिया है। अब क्या करूं? कहां जाऊं? मुझे कैसे शान्ति मिलेगी। क्या सुशीलासे घनिष्टता पैदा करनेमें मुझे सुख मिलेगा? असम्भव। प्रेममें सुख कहाँ? तब

क्या करूं ? सब कुछ जानते हुए भी मैं उससे दूर नहीं हो सकता। वास्तवमें सुशीलाकी याद उसके लिये ऐसी शराब हो गई थी जिसे पीकर मनुष्य पागल हो जाता है। फिर एकाएक ख्याल आया केदार आज जा रहा है। वह घर जाकर जरूर मेरी शिकायत करेगा। मेरे इन्कार करने पर जरूर उसे दुःख हुआ होगा। पर क्या करूं। मेरा मुझ पर इस समय जरा भी वश नहीं है। मैं विवश हूं। इतने में केदार अन्दर आया और घर जानेके लिये अपना सामान ठीक करने लगा। केदार बिस्तर आदि बांध रहा था। सामानमें वीरेन्द्र की चीजे अलग करते हुए उसे मन ही मन बड़ा दुःख हो रहा था। पर मुखसे यह सब प्रकट करना उसने उचित नहीं समझा। वह चीजोंको ठीक करता जाता था और नेत्रोंमें आप ही आप नहीं मालूम क्यों जल भर आता। ऐसा प्रतीत होता था मानो कलेजे पर किसीने वहुत भारी पत्थर रख दिया हो।

धीरे धीरे संध्या हो आई। गाड़ीके छूटने का समय भी नजदीक था। अतः केदारने वीरेन्द्र से कहा—अच्छा भाई ! मैं जाता हूं—तुम छुट्टी समाप्त होते ही जरूर चले आना। ज्यादा दिन न लगाना। तुम्हारे विना एक घड़ी भी दिल नहीं लगता। इतना कहते ही उसके नेत्रोंसे टपाटप आंसू गिरने लगे। वीरेन्द्र बोला—चलो स्टेशन पर मैं भी आ रहा हूं। यह कह कर वे दोनों एक कुलीके सिर पर सामान रख कर स्टेशनकी ओर चल दिये।

गाड़ी पहले से ही लगी हुई थी। सामान आदि डिब्बेमें रखवा कर केदार और वीरेन्द्र आपसमें बातें करने लगे। इतनेमें गाड़ीने

सीटी दी। केदार लपक कर अन्दर बैठ गया। गाड़ी चल दी। स्टेशन पर खड़ा होकर वीरेन्द्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो गाड़ी की ओर देखने लगा। थोड़ी ही देरमें गाड़ी नेत्रों से ओझल हो गई। इस समय वास्तवमें वीरेन्द्रके नेत्र गीले थे।

केदारके चले जाने पर वीरेन्द्रका चित्त कुछ देरके लिये चञ्चल हो गया। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई चीज खो गई हो। जरा भी मन नहीं लगता था। गलेमे कोई चीज अटकी-सी प्रतीत होती थी। छाती किसी भारसे दबी सी मालूम होती थी। रह रह कर वह ऊपर फैले हुए असीम आकाशकी ओर दृष्टिपात करके ठण्डी-ठण्डी आहे भरने लगा। जिस समय उसने केदारके प्रश्नका विना विचारे उत्तर दिया था, उस समय उसे तनिक भी इस बातका ख्याल नहीं था कि केदारके चले जाने पर उसकी यह दशा होगी। किसी तरह रूमालसे नेत्र पोंछ कर उसने घरकी राह पकड़ी।

डेरे पर आया, किन्तु दूरसे ही आज यह मकान उसे काटने-सा दौड रहा था। अन्दर जानेको किसी भी तरह दिल नहीं करता

सोचने लगा कहा जाऊं ? केदार आज उसे सब दिनोंसे प्यारा लग रहा था। उसकी कही हुई एक-एक बात उसके लिये चिर-स्मरणीय बन गई थी। वह खिन्न, उदास और दुखी होकर अन्दर गया। कमरेमे बिछी हुई चारपाई पर चुपचाप लेट गया। जरा भी आहट होती तो समझता केदार आगया। आखें बन्द करता तो केदार का ही चेहरा सामने दिखलाई पड़ता। वह फिर किन्हीं विचारोंमे निमग्न हो गया। किन्तु किसी भी तरह उसका दिल नहीं लगता

था, एकाएक सुशीला का ख्याल आया। सोचने लगा उधर ही चलूं। कुछ देर चित्त बहल जायगा। किन्तु फिर ख्याल आया सुशीलाको भी क्या मेरा ध्यान होगा। विश्वास नहीं होता। मुझ जैसे कितने ही आदमियोंसे उसका प्रति दिन साक्षात्कार होता होगा। फिर भला मुझमें ऐसी कौनसी बात है जिससे वह मेरे लिये व्यग्र हो। वह बड़े प्रेमसे बोलती थी ठीक है—पर उसका तो यह पेशा ही है। उसने अवश्य मुझसे पुनः आनेकी प्रार्थना की थी, किन्तु वेश्याका चातुर्य भी तो इसीमें है। एक चतुर वेश्यामें यह गुण होना ही चाहिये कि एक बार जो उसका ग्राहक बन कर आवे वह सदा उसका ही बनकर रहे। फिर सोचने लगा वह मुझको प्यार नहीं करती हो तो न सही, मेरा बिगाड़ ही क्या लेगी। उसने भले ही बाहरी दिलसे मुझसे पुनः आनेका प्रेमपूर्ण आग्रह किया हो पर इसमें मेरा क्या बनता-बिगड़ता है। सुशीला मुझे यदि प्यार नहीं भी करती तो रुपयेको तो प्यार करती है।-यह सोच कर वह जल्दी उठ बैठा और सन्दूकसे १०) के दो नोट निकाल कर जेबमें रखे और सुशीलाके घरकी ओर चल दिया। रास्तेभर सङ्कल्प-विकल्प करता जाता था। उसका हृदय अपने ही आप प्रश्न करता था और स्वयं ही उन प्रश्नोंका उत्तर देता था। विचार करते-करते वह उस स्थान पर आया, जहां रूपकी हाट थी। सौन्दर्यका सौदा हो रहा था। स्त्रीत्व मिट्टीके मोल बिक रहा था। युवतियां अपनेको खूब सजा-धजा कर अपने-अपने मकानोंके बाहर बरामदोंमें बैठी हुई अपने रूपकी छटा दिखा रही थीं। बाजारमें जाते हुए अलमस्त, शराबी और दुराचारी लोग उनकी ओर देख-

देख कर अपना मनोविनोद कर रहे थे, कोई उनकी ओर देख कर मुंह विजुकाता, कोई असभ्यता पूर्वक खांस ही देता और कोई कुछ मद्दी और कुरुचि पूर्ण मजाक ही करके आगे बढ़ जाता। उन दुराचारियोंके व्यवहारके अनुसार ही युवतियोंका चेहरा भी रंग बदलता था। जब कोई आदमी संकेत करके किसी एकके पास चला जाता तो उसका चेहरा किसी आशासे खिल जाता, किन्तु दूसरे ही क्षण सौदा नहीं पटने पर जब वह आदमी आगे बढ़ जाता तो उस युवतीका चेहरा शोक, दुःख और लज्जा से झुक जाता।

वीरेन्द्रने यह सब देखा। दुःख और सहानुभूतिसे उसका हृदय द्रवित हो गया। वह सोचने लगा—आह! ये युवतियां—निष्ठुर हिन्दू समाजके अन्यायपूर्ण नियमों द्वारा ठुकराई हुई ये युवतियां, समाजके अत्याचारोंके लिये आंसू बहाती हुई अपने पेटकी ज्वालाको शान्त करनेके लिये इतना पतित, इतना नीच और इतना निकृष्ट कर्म कर रही हैं! उसके नेत्रोंमे पानी भर आया। अभी तक वह वेश्याओंको केवल मनोविनोदकी सामग्री समझता आ रहा था, किन्तु आज उसके हृदयमे उनके प्रति एक प्रकारकी सहानुभूति जाग्रत हो आई।

धीरे-धीरे सुशीलाका मकान भी आ गया। वीरेन्द्रने ऊपरकी ओर देखा। सुशीला पहलेसे ही बरामदे पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वीरेन्द्रको देखते ही उसका मुख कमल खिल गया। चार आंखें एक हुईं, वीरेन्द्र भी हंसा। सुशीलाने बड़ी ही नम्रता पूर्वक अभिवादन किया, वीरेन्द्रने भी उसका यथोचित उत्तर दिया। आज वीरेन्द्र निःशंक होकर अन्दर चला गया।

ऊपर जाकर वीरेन्द्रने देखा-सुशीला सामने कमरेके वाहर दरवाजे पर खड़ी है। वह मुस्कुरा कर कमरेकी ओर वढ़ा और वे दोनों कमरेमें बिछे हुए एक गद्दे के ऊपर वैठ गये। कुछ देर तक दोनों एक दूसरेको देखते रहे, न सुशीला ही कुछ बोलती थी और न वीरेन्द्र ही। कुछ देर बाद सुशीला ही बोली,—आज तो आपने बड़ी कृपा की। मुझे तो आपके पुनः आने की रत्ती भर भी आशा नहीं थी।

वीरेन्द्र मुस्करा कर बोला—मेरी ओरसे बड़ी जल्दी आपने ऐसी आशा करली।

सुशीला एक दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई बोली—बावूजी, हम लोग दिन-रात मनुष्योंको भी तो देखती हैं। फिर प्रसंग बदलनेके उद्देश्यसे कहने लगी, आज वहुत जाड़ा मालूम पड़ रहा है, क्यों न बावूजी ?

वीरेन्द्र मुस्कुराने लगा। सुशीलाकी वाक्‌चातुरी उससे छिपी नहीं रही, किन्तु एक व्यर्थ की बातको लेकर वह सुशीलाको ज्यादा हैरान नहीं करना चाहता था। बोला हां, समय परिवर्तनशील है। एक दिन ऐसा भी आयगा जब आप ही कहने लगेंगी ओह किस कदर गर्मी है।

सुशीलाने वीरेन्द्रकी इस युक्तिपूर्ण बात पर केवल हँस दिया। इसके वाद उसने केवल कमलाका प्रतिभा पूर्ण मुख वीरेन्द्र को दिखलानेके लिये ही पुकारा—कमला !

'मा' ! कहती हुई एक द्वादश वर्षीय वालिकाने, जिसके गोरे शरीरमें धानी रङ्गकी साड़ी शोभा दे रही थी, पैंजनियोंकी मधुर

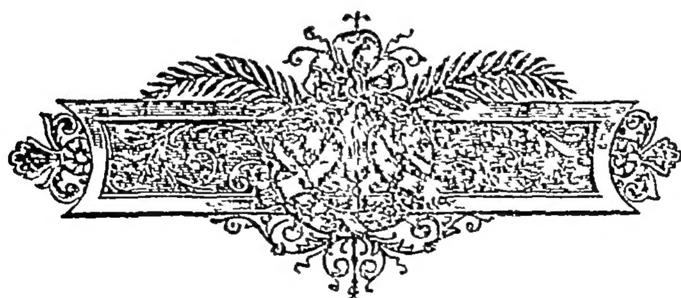
झन्कारके साथ कमरेमें प्रवेश किया। वीरेन्द्रने वह सुन्दर मुख भी देखा और इसके थोड़ी ही देर पहले पैंजनियों की प्यारी झन्कार भी सुनी थी, किन्तु वह झन्कार जितनी मीठी और मधुर थी, उससे कहीं ज्यादा मनोहर एवं आकर्षक था कमलाका चेहरा। वह मन ही मन सोचने लगा—हा दैव! तू कितना निष्ठुर है, कितना अन्यायी है। यह सुन्दर गुलाबका फूल जो किसी सुन्दर वाटिकामें खिलना चाहिये था, तूने कहा पैदा किया, एक वेश्याके घरमें! जिसके कोने-कोनेसे पाप और दुराचारकी दुर्गन्ध आती है। हाय, इस चेहरेकी सरलता एक दिन चञ्चलतामें बदल जायगी, इसका भोलापन एक दिन क्रूरतामें बदल जायगा, यह भोली और अबोध बालिका कमला जो आज वेश्याकी बेटी है एक दिन स्वयं वेश्या कहलायेगी! यह विचार आते ही उसका हृदय धक् से हो गया। आँखोंमें आँसू उमड आये। धीरेसे मुख फेर कर उसने आँसू पोछे। बीच ही में सुशीला बोल उठी—बेटा बाबूजीके लिये पान लाओ!

अपने नूपुरोंकी मनोहर ध्वनिसे उस कमरेको गुञ्जायमान करती हुई वह अन्दर गई और थोड़ी ही देरमें चाँदीकी एक सुन्दर तस्तरीमे रखे हुए पानोंको वीरेन्द्रके आगे रखकर वह अपनी माकी बगलमें बैठ गई।

वीरेन्द्रने बिना किसी संकोच या झिझकके पान उठा लिया और उसको मुंहमें डालता हुआ कमलाकी ओर एक प्यारकी निगाह डालकर बोला—बुरा न मानना तुम्हारी बेटीका जैसा सुन्दर चेहरा

है वैसा ही सुन्दर नाम भी है—कमल—फिर कमलासे बोला—कमल तुम कुछ पढ़ना लिखना भी जानती हो ?

कमला इस बातका कुछ उत्तर दे इसके पहले ही सुशीला बोली,-बाबूजी, कमल अंग्रेजीकी नवीं कक्षाकी पुस्तक पढ़ती है—मेमसे पढ़नेके कारण वह अंग्रेजी अच्छी तरह बोल लेती है, आप बोलिये न। वीरेन्द्रने मुस्कुरा कर अंग्रेजीमें दो चार प्रश्न कमलासे किये और कमलाने उन सारे प्रश्नोंका यथोचित उत्तर दिया। इसके बाद वीरेन्द्र न मालूम क्या सोचने लगा। जरा देर बाद कलाईमें बंधी हुई घड़ीकी ओर देखने लगा। पूरे बारह बज चुके थे, अतः सुशीला से पुनः आनेका वायदा करके वह दिलमें एक नई कसक लेकर तेजी से बाहर चला आया। अब यही उसकी नित्यकी दिनचर्या थी।



केदार जब घर पहुंचा तो किसी को भी इस बातका विश्वास नहीं होता था कि वास्तवमे वीरेन्द्र आगरे ही मे रह गया है, किन्तु जब दिन पर दिन बीतते गये और एक दिन वीरेन्द्र के पिता को आगरे से वीरेन्द्र का एक पत्र मिला, जिसमे उसने लिखा था कि वह अब आगरे में ही पढ़ना चाहता है, तो सबको विश्वास हो गया कि वास्तव मे वीरेन्द्र आगरे ही में रह गया है। इसमें सन्देह नहीं कि वीरेन्द्रका आगरे रहना किसीको भी अच्छा नहीं प्रतीत हुआ, किन्तु उसके माता पिता तो रत्ती भर भी इस बात पर सहमत नहीं हुए। लाला दीनदयालने वीरेन्द्रको बुलानेकी हरचन्द कोशिसें कीं, अंतको नाता तोड़ने और तनिक भी आर्थिक सहायता न करने तक का भय दिखाया, किन्तु वीरेन्द्र अपनी बात पर अड़ा रहा। विवश होकर

पिताको भी उसको कुछ न कुछ मासिक भेजना ही पड़ा। यद्यपि वीरेन्द्रके माता पिताको पुत्रका परदेशवास बहुत ही कष्टप्रद था, किन्तु इन सबसे ज्यादा कष्ट पा रही थी कला। इसमें सन्देह नहीं कि उसका पति केदार यद्यपि उसके नेत्रोंके आगे मोजूद था, किन्तु फिर भी वह कुछ उद्विग्न थी। जबसे केदार घर पर आया था और उसने कलाके सामने वीरेन्द्रकी रुखाई और उसकी ओरसे उदासीन होनेका जिक्र किया था, तभीसे वह कुछ उदास सी हो गई थी। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते थे त्यों-त्यों वीरेन्द्रका अभाव उसको उसी तरह विकल करता था, जैसे मछलियोंको पानीकी न्यूनता। वह अपने हृदयको लाख समझाती, किन्तु एक हठी बालककी तरह उसका मन भी उसके काबूसे बाहर था। सोचती मुझे क्या हो गया है, मेरे प्राणेश, मेरे सर्वस्व तो मेरे सामने उपस्थित हैं, फिर मैं क्यों उस वीरेन्द्रके लिये जिसने आज तक कभी झूठे मनसे भी मुझे याद नहीं किया, इस तरह चिन्तित हूं? किन्तु रह-रह कर वीरेन्द्रकी वह सरल आकृति, मुस्कुराता हुआ चेहरा, मीठी बोलीमें भाबी कह कर पुकारना आदि बातें एक साथ ही उसके कमजोर हृदय पर आघात करती थीं। किसी तरह उसे चैन नहीं पड़ता था। यद्यपि वह खूब अच्छी तरह जानती थी कि एक पर-पुरुषके लिये इस तरह बेचैन होना कभी भी उचित नहीं है और साथ ही उसके पति केदारके सामने वह एक अक्षम्य अपराध कर रही है, किन्तु उसका हृदय किसी भी तरह वीरेन्द्रको पर-पुरुष माननेको तैयार नहीं होता था।

यद्यपि कला केदारके सामने अपनी स्थिति प्रकट न होने देनेकी पूरी कोशिस करती थी, किन्तु केदार भी मिट्टीका पुतला नहीं था। उसको कला की बात-बातमें असावधानी तथा समय-समय पर वीरेन्द्रकी ही बात चलाने से—खूब अच्छी तरह मालूम हो गया था कि कला वीरेन्द्र की यादमें दुखी है। वह कभी-कभी हंसीमें इस बातको प्रकट भी कर देता, किन्तु कला उसके सामने ऐसी भोली बन जाती और ऐसी-ऐसी बातें करने लगती जैसे वीरेन्द्रसे उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है और वह उसके ऊपर बिना विचारे यह दोषारोपण कर रहा है। जो हो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कला वीरेन्द्र की याद में बुरी तरह छटपटा रही थी।

एक दिन केदार कालेजसे जल्दी चला आया। घर पर आकर ज्योंही वह अपने कमरेकी ओर बढ़ा उसने देखा कला एक निर्वासिता वियोगिनीकी तरह सिरके बाल खोले एक श्वेत रंगकी साड़ी पहने हुए बैठी किसी गूढ़ विचारमें निमग्न है। केदार एकदम चुपचाप जाकर उसके पीछे खडा हो गया। कलाको इसका तनिक भी पता न लगा। वह पहले की ही तरह अविचल, शान्त सिर झुकाये बैठी रही। केदारने देखा सामने एक लिफाफा पड़ा हुआ है जिसके ऊपर वीरेन्द्रका पता लिखा है। उसने और गौरसे देखा अक्षर कलाके ही थे। केदारने चुपचाप फुर्तीसे लिफाफा उठा लिया। अब जाकर कलाका ध्यान टूटा। वह झपटकर लिफ़ाफा छिननेको दौड़ी किन्तु सब व्यर्थ। लाख चेष्टा, आरजू-मिन्नतें करने पर भी केदारने लिफ़ाफा नहीं लौटाया। केदार लिफाफा लेकर तेजीसे बाहर चला गया।

कलाका चेहरा एकदम स्याह हो गया। उसकी दशा इस समय ठीक उस चोरकी भांति हो रही थी जो पहले पहल चोरी करे और तुरन्त ही माल सहित पकड़ा जाय। उसने उस लिफाफेमें क्या-क्या लिखा है इसकी उसे जरा भी याद नहीं थी। उसका हृदय विक्षुब्ध एवं व्याकुल हो उठा। आंखोंके आगे अन्धेरा छा गया। मालूम होने लगा मानो पैरों तलेकी जमीन धीरे-धीरे गायब हो रही हो। अब क्या करे। वह सोचने लगी मैंने हाय! यह कितनी भयङ्कर भूल की? अब मैं उनको कैसे विश्वास दिलाऊंगी। मैं वेहोश थी, मैंने उस सत्यानाशी पत्रमें न मालूम क्या-क्या लिख दिया! फिर उसको कालेजके अधिकारियों पर भी क्रोध हो आया—कहने लगी, रोज तो तीन बजेसे जल्दी नहीं आते थे—क्या आज ही कालेजको भी बारह बजे बन्द हो जाना था—फिर सोचती—ठीक है—अपराधी को सजा मिलनी ही चाहिये। मेरे भला वीरेन्द्र लगते ही क्या थे, जो मैं उनको प्रेम-पत्र लिखने बैठ गई? क्या मैंने अपने प्रीतमके प्रति यह अक्षम्य अपराध या विश्वासघात नहीं किया है? पर अब तो जो होना था सो हो गया—अब इस भूलका प्रायश्चित्त कैसे हो? सबसे पहले उनको कैसे विश्वास दिलाऊं कि यह पत्र मेरा लिखा नहीं है। हाय! अभागिनी, कुलटा तूने बना बनाया घर बिगाड़ दिया। कलमुंही अब संसारमें तू मुंह दिखाने योग्य नहीं रही—यह कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। उसको फिर वीरेन्द्रकी याद आई। सोचने लगी उस वीरेन्द्रके लिये जिसको मेरा जरा भी ध्यान शायद ही हो मैंने

इतना बड़ा अपराध कर डाला ! पर अब क्या हो सकता था—तीर कमानसे छूट चुका था।

* * * *

केदार घरसे निकल कर सीधा मैदानकी ओर चल दिया। यद्यपि उसने पत्रको अभी पढ़ा तक नहीं था, तथापि कला उसके हृदयसे उतर गई थी। वह रास्ते भर संकल्प-विकल्प करता जाता था। उसको वीरेन्द्र पर भी क्रोध हो आया। उसके हृदयमें इस बातने बड़ी मजबूत जड़ जमा ली थी कि हो न हो वीरेन्द्र और कलाका यह प्रेम बहुत पहलेसे ही चला आ रहा है। फिर सोचता मैंने कभी भी वीरेन्द्रको ऐसा आदमी नहीं समझा था,—कला पर भी मुझे पूर्ण विश्वास था, किन्तु वह कितनी विश्वासघातिनी निकली। यह विचार आते ही उसके नेत्र भर आये और आंसुओंकी झड़ी लग गई। मैंने कलाके प्रति कभी भी किसी भी प्रकारका विश्वासघात नहीं किया, फिर क्यों वह मेरा इस प्रकार तिरस्कार करने पर उतारू हुई। फिर सोचता ठीक ही स्त्रियों पर विश्वास करना भूल है। लाख उनको अपनाओ, प्यार करो किन्तु वे अपनी नहीं होतीं—यही सब सोचते-सोचते वह मैदानमें आगया। उसने देखा कई पुरुष अपनी स्त्रियोंको लिये हुए वायु-सेवनके लिये आये हुए हैं। यद्यपि केदारका उन पुरुषोंके साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं था तथापि स्त्रियोंकी ओरसे उसका मन विद्रोही हो उठा था। वह सभी स्त्रियोंको नीची निगाहसे देखने लगा और उसकी दृष्टिमें वे पुरुष दयाके पात्र थे। सामने एक पीपलके पेड़के नीचे एक बैञ्च बिछी हुई थी। वह उसी बेञ्चके ऊपर

बैठ गया। एक बार कलाका सुन्दर मुख उसके सामने आया, किन्तु केदारने घृणासे मुख फेर लिया। उसके नेत्र एक बार फिर भर आये। धीरेसे जेबसे रूमाल निकाल कर उसने आंसू पोंछे और इसके बाद कांपते हुए हाथोंसे उसने वह सत्यानाशी पत्र निकाला। यद्यपि कला की ओरसे उसका मन फिर गया था फिर भी वह परमात्माको मनाने लगा कि—दैव ! इस पत्रमें कोई ऐसी बात न लिखी हो जिससे मेरा चित्त टूट जाय। बड़ी कठिनाईसे उसने पत्र हाथमें लिया। धीरे-धीरे लिफाफेके अन्दरसे पत्र निकालकर वह पढ़ने लगा। उसमें लिखा था,-

"प्यारे वीरेन्द्र !

जबसे आप मेरे पाससे गये हैं—नहीं मालूम क्यों मेरा हृदय आपकी ओर आकर्षित होता चला जा रहा है। लाख चेष्टा करने पर भी मैं इसकी गतिको रोक नहीं सकती। यद्यपि मुझे अच्छी तरह अवगत है कि आपको मुझ गरीबिनीकी कभी भी याद नहीं आती, तो भी मैं क्या करूं इस पागल मनने मुझे दिवानी बना दिया है। हर घड़ी खाते-पीते, उठते-बैठते, सोते-जागते मुझे केवल आपकी ही याद बनी रहती है। मैं यह भी जानती हूं कि आपके भाईके प्रति मेरा यह अन्याय है, पर क्या करूं दिल पर तर्क नहीं चलता। ओह ! आप कितने निष्ठुर हो गये ? जबसे यहांसे पदार्पण किया था, आज तक कभी भी आना तो दूर रहा, एक पत्र तक नहीं भेजा। पर आश्चर्य तो यह है कि मन आपकी ही ओर खिंचा जा रहा है। आप ही संभाले तो संभलूं, नहीं तो मृत्यु अनिवार्य है ही।

आपके प्रेममें दीवानी—कला।"

पत्र पढते-पढते केदारके मुंहसे एक ठण्डी आह निकली और उसके बाद वह मूर्च्छित होकर गिर पडा। बगीचेके चारो ओर लगे हुए वृक्षोंकी शीतल वायुने उसे पुनः जगा दिया। अब क्या करना चाहिये, वह कुछ भी निश्चय न कर सका। पत्रका एक-एक शब्द उसे जैसे काटने दौड़ रहा था। एक बार फिर कला और वीरेन्द्रकी कलुपित मूर्तियाँ उसके नेत्रोंके आगे नाचने लगीं। उसके नेत्रोंसे पुनः अविरल अश्रुधारा वह निकली। वह अब ज्यादा अपनेको नहीं संभाल सका। सोचने लगा—आह! उस मकानमें जहाँ केवल कला को देख कर ही मैं अपने जीवनकी मरुभूमिमें हरियालीका आनन्द लूटता था, अब कैसे प्रवेश करूंगा। कलाका सुन्दर चेहरा, मीठी बोली, सलज्ज स्वभाव आदि ही मेरे जीवनके सहारे थे—जब वे ही मेरे नहीं रहे तो अब इस जीनेसे ही क्या लाभ? फिर सोचने लगा कला! ओह निष्ठुर कला!! तुम अब विश्वासघातिनी हो! जानती हो तुमने विश्वासघात किसके साथ किया है? उस निर्बल प्राणीके साथ, जिसके प्रत्येक श्वासमें तुम थी! आह तुमने अपना वह विशुद्ध प्रेम एवं स्वच्छ हृदय जिसे तुम एक बार मुझे अर्पण कर चुकी थी. आज मुझसे छीन कर वीरेन्द्रको दे डाला! नहीं, प्यारी नहीं. इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। हृदयकी विवशताने तुमसे यह सब कराया। अच्छा पर क्या भूल कर भी तुमने कभी मेरा विचार किया? मेरा बना बनाया घर तुमने सूना कर दिया—मेरे जीवनका मनोहर बाग तुमने उजाड कर दिया! तुम्हीं मेरी जीवन थी। जब तुम्हीं मेरी नहीं रही तो अब मेरा रहा ही क्या? जाओ

प्राणवल्लभे, तुम प्रसन्न रहो ! तुम्हारा वीरेन्द्रके साथका निर्मल प्रेम उदधिके समान कभी शुष्क न हो। आह ! अब अपने इस प्रेमी जीवनमें तुम इस अभागे को जो तुम दोनोंके प्रेम-मार्गका बाधक था, कभी नहीं देख सकोगी।—एक बार फिर नेत्रोंने जल वर्षाया। अब कुछ सन्ध्या हो आई थी। अभागा केदार उन्मत्त मनुष्यकी तरह दौड़ा हुआ पतित-पावनी भागीरथीके तट पर आ गया। सामने कई छोटी-छोटी नौकाएं इधर-उधर दौड रही थीं। दो एक बड़े जहाज नदीके किनारे पर खड़े थे। केदारने सामनेकी नावों को देखा। वह पुनः विचारने लगा—मुझ अभागेका जीवन भी ठीक इन्हीं नौकाओंके समान है। इनके खेवैया तो अभी मौजूद हैं। किन्तु मेरा नाविक मुझे छोड़ कर चला गया। उसने एक बार फिर पत्रकी ओर देखा। कलाकी पिछली एक-एक बात अब उसे याद आने लगी। वह, सोचने लगा यह पत्र उसी कलाका लिखा है जो एक दिन कहती थी तुम भले ही मुझे छोड़ दो पर मैं आपको छोड कर कहा जा सकती हूं। कमलके लिये जैसे दिनकर, चकोरीके लिये जैसे चाद है, वैसे ही मेरे लिये तुम हो। पर अब बताओ प्राणेश्वरी ! मैं तुम्हारा कौन हूं ? क्यों लज्जासे सिर झुका लिया, कह भी दो मेरा शत्रु मेरे प्रेमका बाधक है !

केदारने एक बार फिर पत्र पढ़ा। उस स्थान पर वह कुछ रुक गया। वहा लिखा था,—दिल पर तर्क नहीं चलता। वह सोचने लगा ठीक है—प्राणवल्लभे, दिल पर तर्क नहीं चलता। मनने जिसे चाहा उसीको तुमने चाहा। इसमें भला तुम्हारा अपराध ही क्या है ?

प्राणेश्वरी ! तुम सच कहती हो प्रेम किसी की खरीदी हुई वस्तु नहीं होती, पर मुझको भय तो यह है कि तुम जैसे मुझे एक बार प्यार करके वीरेन्द्रको प्यार करने लगी, उसी प्रकार वीरेन्द्रको त्याग कर किसी दूसरेको अपना प्रेमपात्र न बनाना ! अस्तु, लो प्यारी मैं अब एक बार हृदयसे तुम्हारे प्रेम की दृढ़ता को बना रखने की दैवसे प्रार्थना करके चलता हूं। इतना कह कर केदारने उस पत्रके टुकड़े-टुकड़े करके पानीमें फेंक दिये और उसके बाद आँखें बन्द कर हाथ जोड़ कर पतितपावनी भागीरथी से प्रार्थना करने लगा—माँ ! मैंने सुना है तुम लाखों निराश्रितोंको आश्रय देने वाली हो, जिनका संसारमे कोई नहीं है उनको शरण तुम्हारे विशाल वक्षस्थलमें मिलती है। माँ, तुम्हारा यह अभागा बेटा भी आज एकदम निराश्रय है—इसका सारा धन आज लुट गया—मातेश्वरी, इस दीनकी रक्षा करो, अपनी प्यारी गोदमें इस अंधेको भी शरण दो–इसके बाद छप-सी एक बार आवाज हुई और केदार अदृश्य हो गया। पतित-पावनी गंगा पहले की ही तरह शान्त एवं गम्भीर थी।

संसार परिवर्तनशील है। जो आज है वह बहुत सम्भव है कि कल न रहे। प्रकृतिका यह नियम सनातन है। हमारे उपन्यासमे भी इसी प्राकृतिक नियमने भयानक परिवर्तन कर डाला। केदार अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर ही चुका था, उसके साथ ही वीरेन्द्रके माता-पिता भी इस लोकसे चल बसे। वीरेन्द्रके मार्गके रोडे दूर हो गये। कला आज दो वर्षसे लापता है। कोई कहता है भाग गई। कोई कहता है नदीमें डूब गई, जितने मुंह उतनी ही बातें हैं। केदारका छोटा भाई भी रमेश अब सयाना हो गया है। केदारकी असामयिक मृत्युसे तथा कलाके एकाएक अदृश्य हो जानेके कारण गृहस्थका सारा भार उसी पर आ पड़ा। कालेज भी छूट गया और साथ ही माता-पिताको सुख पहुंचानेके लिये ब्याह भी करना पड़ा। अस्तु।

वीरेन्द्र अभी आगरेमें ही था। जबसे माता-पिताका देहावसान हुआ था, उसके मन की सारी झिझक दूर हो गई थी और अब वह निःसंकोच सुशीलाके घर आया जाया करता था। कमलाके शरीरमे भी अब काफी परिवर्तन हो गया था। कमला अब वह कमला नहीं थी। जिस स्वतन्त्रताके साथ वह पहले वीरेन्द्रके साथ बोलती थी अब वह स्वतन्त्रता नहीं रही थी। बात-बातमे लज्जा थी, बात-बात मे झिझक थी। कुन्दन किये हुए सुवर्णके समान उसका शरीर चमकने लगा था। वह अपने भारसे दबी-सी, झुकी-सी, पड़ती थी। उसको स्वयं ही मालूम नहीं था, कि उसमें यह इतनी लज्जा, ऐसा आश्चर्य-जनक परिवर्तन क्यों हुआ? पहले वीरेन्द्रका न आना उसको इतना नहीं खटकता था, जितना अब। यद्यपि वह दिन भर वीरेन्द्रकी प्रतीक्षा किया करती थी, किन्तु सन्ध्याको चार आँखें एक होते ही वह लज्जासे सिर झुका लेती और वीरेन्द्रके हजार बोलने पर भी कुछ न बोल सकती। वास्तविक बात यह थी कि वह मन ही मन वीरेन्द्रको अपना चुकी थी।

प्रति दिन सन्ध्याको जब वीरेन्द्र कमलाके घर पहुंचता तो कमला तड़पके बरामदेमें खड़ी नजर आती। वीरेन्द्र जब ऊपरकी ओर देखता तो वह मुस्कुराते हुए दोनों हाथ जोड़ अन्दर चली जाती। अन्दर जाकर वीरेन्द्र जब कमरेमें बैठता तो कमला भी ठीक उसके सामने एक अजीब नाजो अन्दाजके साथ बैठ जाती। सुशीला भी कुछ देर वहां पर बैठी रहती और फिर अपने कामसे इधर-उधर चली जाती। जिस समय ये दोनों बैठे रहते तो वीरेन्द्र

कमलाकी ओर देखता और कमला हृदयको घायल कर देने वाली अदाके साथ मुस्कुरा कर सिर झुका लेती। यद्यपि कमला वेश्याकी बेटी थी, किन्तु उसमें जो सरलता थी, वह उसके साथ वीरेन्द्रको वेश्याका सा व्यवहार करनेसे रोकती थी। यहां तक कि वीरेन्द्र आज तक उसके आगे अपना प्रेम तक प्रकट नहीं कर सका। एक दिन कमला कुछ लिख रही थी। वीरेन्द्रने हँस कर कहा यदि अंग्रेजी जानती हो तो Love (प्रेम) पर कोई वाक्य लिखो। कमला चतुर थी। वीरेन्द्रका भाव तुरन्त ताड़ गई। उसने तुरन्त लिख दिया I Love you (मैं आपको प्यार करती हूं।) वीरेन्द्रने मुस्कुरा कर कहा यदि इस वाक्यके आगे 'कमला' और लिख दिया जाय तो कैसा रहे? कमलाने मुस्कुराकर उत्तर दिया,–किसीके मनकी बात कोई क्या जाने? फिर क्या था वीरेन्द्रको अच्छा अवसर मिला। वह कहने लगा—सच कहता हूं कमले! मेरे इस हृदयमें केवल तुम ही तुम हो! वास्तवमें मेरा जीवन तुम्हारे हाथ है।

कमला भी ऐसी वैसी लड़की न थी। चटसे बोल उठी,–बाबूजी पुरुषोंकी बातका कोई विश्वास नहीं हैं। ये प्रायः दगाबाज होते हैं। भोली बालिकाओंको प्रेमपाशमें बांध कर निर्मोही भौंरेके समान रस चूस कर भाग जाते हैं। सच कहती हूं बाबूजी, मुझे आपकी बात पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं होता।

वीरेन्द्र बोला—कमले, मैं कैसे तुमको विश्वास दिलाऊं? कहो तो हृदय चीर कर सामने रख दूं। कमले, तुम्हीं बतलाओ क्या

मजनूं और फरहाद पुरुष नहीं थे ? तुम चाहे लैला हो या न हो किन्तु मैं तुम्हारा मजनूं अवश्य हू ।

कमलाने लज्जासे सिर झुका लिया । कहने लगी बाबूजी, सब सामने ही आयगा ।

इतना कहनेके बाद वीरेन्द्र उठ खड़ा हुआ और अपना हाथ कमलाके आगे बढ़ाया । कमलाने भी वीरेन्द्रका हाथ पकड लिया । वीरेन्द्रके सारे शरीमें मानो बिजलीसी दौड़ गई । सारा शरीर पसीनेसे तर हो गया । वीरेन्द्र बोला—कमले, आजसे तुम मेरी हुई ।

कमलाने सिर झुका लिया । कहने लगी—बाबूजी, आपके लिये आजसे, किन्तु मैं तो कभीसे आपकी हो चुकी ।

वीरेन्द्र चला गया ।

* * *

वीरेन्द्रके चले जाने पर कमलाके हृदयमें भारी उथल पुथल मच गई । वीरेन्द्रकी आजकी बातने उसके कोमल हृदयमें बड़ी मजबूत जड़ जमा ली थी । हृदयमें नाना प्रकारके प्रश्न उठते थे, जिनका वह स्वयं ही समाधान भी कर लेती थी । कभी सोचती-क्या सचमुच वीरेन्द्र बाबू मुझे प्यार करते हैं ? क्या वे मुझे अपनी दासी रूपमे ग्रहण करेंगे ? विश्वास नहीं होता । मेरे रूप और यौवन पर मुग्ध होकर निर्दयी मधुकरकी तरह भले ही वे मुझे कुछ दिनोंके लिये अपनाएं किन्तु जन्म भर वे मुझे अपनी बनाकर रक्खेंगे, विश्वास नहीं होता । फिर विचार आया—मैं एक वेश्याकी बेटी हूं । यदि विश्वास होने पर भी उनसे मेरा दर्शन नहीं हो सकता । तब क्या करूं ?

सब कुछ जानते हुए भी तो मैं इस हठी दिलसे लाचार हूं। जब आँखें बन्द करती हू तो केवल उनकी ही मूर्ति सामने नजर आती है। विभो ! क्या करूं, तुम मुझे ठोकर मारो, दुत्कारो, चाहे जो करो पर मैं तुमको छोड़ कर कहीं नहीं रह सकती। मेरे हृदयकी शान्ति, मेरी आत्माका सन्तोप, मेरे जीवनके एकमात्र आधार तुम ही हो। यह विचार आते ही उसके दोनों नेत्रोंसे आंसुओंकी झड़ी लग गई। धीरेसे सीनेसे रूमाल निकाल कर उसने आंसू पोंछ डाले। इतनेमे दासीने आकर कहा भोजनके लिये मां बुलाती हैं।

दिलका हाल किसी पर प्रकट न होने देनेके भयसे वह गई और भोजनमें किसी न किसी बातकी त्रुटि बतला कर दो एक कौर मुंहमें डाल हाथ मुंह धो सोने चली गई। वह सो तो गई किन्तु नींद कहाँ ? रह रह कर वीरेन्द्रका मनोहर चेहरा उसके नेत्रोंके आगे नाचने लगा। क्या वास्तवमें वीरेन्द्र बाबू मुझे अपनायेंगे—यह विचार बार-बार उसके हृदयमें उत्पन्न होता था। फिर सोचती-मर्दोंकी बात पर विश्वास करना सरासर भूल है। उस पर भी वेश्या के घरमें आनेवाले पुरुष पर कभी भी यकीन नहीं किया जा सकता। फिर सोचती यदि वीरेन्द्र वेश्याके घर आने जाने वाला पुरुष है तो मैं भी तो एक वेश्याकी बेटी हूं, वेश्याके घरमें पली हूं। नहीं वीरेन्द्र बाबू कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। उनके चेहरेसे सदा ही सज्जनता एवं विश्वास टपकता है। फिर सोचती-माना कि वीरेन्द्र बाबू मुझे कुछ दिनों अपने पास रखनेके बाद आमको गुठलीकी भांति फेंक देंगे। माना वे मेरे रूपके गाहक हैं, माना वे मेरे प्रति भारी अन्याय

करेंगे पर करूं क्या सब कुछ जानते हुए भी तो मैं उन्हे भुला नहीं सकती। हृदय तो इन सारे कारणोंको सुनने या इन पर विचार करनेको तैयार नहीं। यह हठी दिल तो वीरेन्द्र बाबू द्वारा किये गये सभी अत्याचारोंको सुख माननेको तैयार है। यही सब सोचते-सोचते उसके पलक लग गये और नींद आ गई। स्वप्नमे उसने क्या देखा कि वह एक अगाध नदीमें डूब रही है और सहायताके लिये चिल्ला रही है। इतनेमे कहीं से वीरेन्द्र बाबू आ गये और कमलाकी करुण-पुकार सुनते ही पानीमें कूद पड़े और उसे अपनी गोदमें उठा कर पानीसे बाहर ले आये। रास्तेमे जब वे कमलाको लेकर आ रहे थे तो किसी पगली स्त्रीने बलात कमलाको वीरेन्द्रके हाथसे छीन कर जलमें फेंक दिया, कमला जाग पडी।

उसने चारों ओर देखा। सबेरा हो गया था। भगवान भास्कर सदाकी भाति अपनी सुनहली किरणोंसे माता वसुन्धराको चमका रहे थे। कमला अपने बिस्तरेपर ही बैठी रह गई। रह रहकर स्वप्नकी सारी बातें उसे याद आने लगीं। किन्तु अन्तकी बात याद करके उसके हृदयमे एक हल्की सी ठेस लगी। वह स्त्री कौन थी? यह प्रश्न बार-बार उसके हृदयमे उठने लगा। मेरे सौहागकी बैरन वह कौन थी। फिर सोचती स्वप्नकी बातका क्या ठिकाना? ऐसी ऊट-पटांग बातों पर भी भला क्या कोई विश्वास करता है? इन्हीं विचारोंमें मग्न थी कि सुशीलाने आकर कहा,—क्यो बेटी, आज इतनी देर तक कैसे सोई रही? कमला मा की आवाज कानोंमें पड़ते ही झट उठ खड़ी हुई और बोली—ऐसे ही मा कुछ सुस्ती आगई थी।

दो वर्ष पहलेकी बात है। जिस समय केदारकी मृत्युका समाचार कलाको मिला था और कुछ देर बाद नदीसे निकाल कर केदार की लाश घर पर लाई गई थी, उसी समय कलाका हृदय आत्मग्लानि से फटा जा रहा था। यद्यपि और किसीको इस रहस्यका जरा भी भेद मालूम नहीं था, तब भी कलाका हृदय बार-बार कह रहा था कि केदारकी मृत्युका कारण तू है। वह स्वयं ही अपने आप पर क्रोधित होने लगी। उसका हृदय कह रहा था,—कलमुही! तू अब कैसे संसारको मुंह दिखा रही है? तेरी जैसी डायन स्त्री संसारमें और कोई नहीं। कुल-कलङ्किनी तूने अपने ही हाथों अपनी चूडियां तोड़ीं। रह-रह कर केदारका भोला चेहरा उसके नेत्रोंके आगे नाचने लगा। मानो केदार उससे कह रहा था विश्वासघातिनी कला! मेरी

मृत्युका कारण तू है ! कला अब ज्यादा देर चुप बैठी नहीं रह सकी। इधर केदारकी लाश लोग शमशानकी ओर ले गये—उधर कला बिना कुछ कहे सुने चुपचाप घरसे बाहर चली गयी । घरके सभी लोग दुःख मना रहे थे। किसीने भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि कला कहाँ गई।

घरसे निकल कर वह सीधी भागीरथीके तट पर आ गई। उसने सोचा अपना यह अपवित्र, पतिघातक शरीर आज उसी स्थान पर समाप्त कर दूं जहा केदारने अपनी इहलीला समाप्त की थी। वह किनारे पर खडी होकर पतितपावनी भागीरथीकी निर्मल तरङ्गोंको देखने लगी। इस समय केदारकी एक-एक बात उसे याद आने लगी। हाय ! अभागिनी ! तूने यह क्या किया ? वीरेन्द्रको व्यर्थ एक पत्र लिख कर तूने अपने प्राणेश की मृत्युको आमन्त्रित किया। हा ! अभागिनी अब संसारमें तेरा कौन है। यह विचार आते ही वह पानीमें कूदनेको तैयार हुई, किन्तु पापी मन भला कब साथ देता।

आत्महत्या करनेके लिये भी बहुत शक्तिकी आवश्यकता होती है। जिस हृदयने वीरेन्द्रको प्यार करके केदारको मारा था, वह क्या कलाको आत्मघात करने दे सकता था ? अभागिनी कलाके पापी हृदयने कहा। जिस वीरेन्द्रके लिये उसका पति उसे छोड़ कर चला गया। जिसके प्रेममें दीवानी होकर उसने वह [illegible] पत्र लिखा, जिस वीरेन्द्रको बिना देखे उसकी यह गति हुई, उसको बिना एक बार देखे ही वह क्या चली जायगी। नहीं—एक बार उसका दर्शन कर चुकनेके बाद फिर मैं अपना मार्ग निर्धारित करूँगी।

यह विचार हृदयमें आते ही वह लौट आई और सीधी हवड़ा स्टेशनकी ओर बढ़ी। वह स्त्री जिसने कभी घरसे बाहर पैर नहीं रखा था, आज पैदल हजारों पुरुषोंकी भीड़में से निकल कर जा रही है। ओह ! प्रेम तेरी माया अपार है ! किसी तरह इधर उधर सशंकित नेत्रोंसे देखती हुई कला हवड़ा स्टेशन पर पहुंची। भय था कि कोई देख न ले। जल्दीसे जेब से रुपये निकाल कर आगरे का टिकट खरीदा और प्लेटफार्म के पास आई। गाड़ीमें अभी दो घण्टेकी देर थी। अब क्या करे। तेजी से मुसाफिरखानेकी ओर बढ़ी। हजारों मनुष्य दिखलाई दिये। कोई बैठा था—कोई लेटा था और कोई अपना सामान बाँध रहा था। कलाका हृदय थरथर कांपने लगा। सोचने लगी, अच्छा होता यदि भागीरथीमे डूब कर ही मैं अपना यह पापी, भाग्यहीन शरीर छोड देती, पर हाय !

मौत भला किसकी आज्ञा पर चलती है। फिर सोचती मूर्खे ! यदि उसी समय तेरा देहावसात हो गया होता तो तेरे भाग्यमें लिखा हुआ यह दुःख और कौन भोगता ? अपराधीको बिना पूरी सजा भोगे कब छुटकारा मिलता है ? भाग्यहीना कला ! तेरा निस्तार अभी कठिन है। यह विचार आते ही कलाके नेत्रोंसे टपा-टप आंसू गिरने लगे। उसने चुपचाप आँसू पोंछ लिये। नेत्रोंके सामने केदारकी पावन मूर्ति पुनः उसके सामने आ गई। इसके बाद उसे अपना पिछला स्वप्नका सा जीवन याद आने लगा। ओह ! यही कला जो आज दर-दर ठोकरें खा रही है, उन दिनों यदि जरा भी उदास हो जाती तो केदार बिना उसकी उदासीका कारण पूछे

और उसका समाधान किये भोजन तक नहीं करता था। उसे याद आने लगा। हाय! किस तरह वह केदारके कारण पूछने पर—कुछ तो नहीं—कह कर उसे तंग किया करती थी और वह भी बिना कारण जाने उसका पिण्ड नहीं छोडता था। वह अपने उस सुनहले दिनोंके साथ अबकी तुलना करने लगी—नेत्रोंसे पुनः आसुओंकी झडी लग गई। आज—हाय! आज यदि वह रो-रोकर समुद्र भी बना दे या सिरको पटक पटक कर टुकड़े-टुकड़े भी कर डाले तो भी कोई आँसू पोंछनेवाला नहीं। विभो! तुम्हारी लीला अपार है। अस्तु, कलाने देखा—सामने एक कोनेमे कुछ स्त्रियाँ बैठी हैं। उसको सहारा मिला। चुपचाप जाकर उनके पास ही सिमट कर बैठ गई। उस समय उसकी दशा ठीक उस मनुष्यकी तरह हो रही थी जो अंधेरी रातमें रास्ता भूल गया हो और जङ्गलमें जा पड़ा हो।

इतनेमें उन स्त्रियोंके पुरुष आ गये और उनसे बोले चलो गाडी आ गई। अभागिनी कलाके हृदयमें एक हूक सी उठी। वह सोचने लगी क्या मुझे बुलाने भी कोई आयगा। फिर सोचने लगी हाय! मेरा सर्वस्व तो लुट गया-नहीं लुट क्यों गया-मैंने अपने इन पापी हाथोंसे उनको जलमें डुबो दिया, फिर अब भला मेरा इस संसारमें है ही कौन, जो मुझ दुखारीको बुलाने आवे। एक बार फिर धीरेन्द्रकी याद आई। घने अन्धकारमें बिजलीकी तरह चमक दिखाई दी। परन्तु उसी पल पुनः अन्धकार हो गया। फिर सोचने लगी नहीं धीरेन्द्र मुझे अवश्य प्यार करते हैं यदि वे मुझे प्यार न करते होते

तो मेरा दिल भी इस तरह उनके प्रेममें दीवाना न हो जाता। यह विचार आते ही एक बार फिर उसके मुरझाये हुए चेहरे पर आशाकी झलक दिखलाई देने लगी।

हमारी आशा! संसारमें तू सबसे शक्तिशालिनी है। वास्तव में मनुष्य तेरे ही बल पर जीता है।

गाड़ीका समय हो गया। सभी यात्री प्लेटफार्मकी ओर बढ़े। कला भी सिर झुकाये धीरे-धीरे जाकर एक जनाने डिब्बेमें बैठ गई। गार्डने सीटी दी। गाड़ी चल दी।

* * *

एक दिन रातको वीरेन्द्र सुशीलाके घर गया और कमलासे बोला—कमले! चलो आज सिनेमा देख आवे।

कौनसा खेल है बाबूजी, कमलाने पूछा। वीरेन्द्रने मुस्कुरा कर कहा, —शीरीं फरहाद। कमला बोली,—आपकी आज्ञा भला मैं कब टाल सकती हूं? जरा देर रुक कर बोली-माँ से कह लिया, वे क्या कहती हैं? मैंने तो अभी नहीं कहा-तुम्हीं पूछ लो न। कह कर वीरेन्द्र कोटकी जेबसे एक रेशमका रुमाल निकाल कर पसीना पोंछने लगा।

कमलाने आवाज दी,—माँ, सुनो तो।

'क्यों बेटा'-कहकर सुशीला सामने आई और कमला तथा वीरेन्द्र की ओर एक प्रेमपूर्ण दृष्टि डाल कर बोली—क्या कहती हो बेटी?

माँ! बाबूजी कहते हैं सिनेमा चलो-फिर बोली—बड़ा अच्छा खेल है—चलोगी माँ?

सुशीला बोली—बेटा ! मेरे तो सिरमें आज कुछ दर्द है—तुम और बाबूजी देख आओ।

कमलाकी बन आई—बाहरी मनसे फिर बोली—तुम भी चलो माँ !

ना बेटा—आज मैं नहीं जा सकती। मैं फिर देख लूंगी। तुम लोग देख आओ।

सुशीलाके घरकी गाड़ी थी। उसी समय कोचवानको बुला कर गाड़ी तैय्यार करनेकी आज्ञा दी गई। थोड़ी देरमें कोचवान आकर बोला—हुजूर, गाड़ी तैयार है। वीरेन्द्र और कमला नीचे उतरे और गाड़ीमें बैठ कर सिनेमा घरकी ओर चल दिये। गाड़ी दौड़ रही थी। वीरेन्द्रने कमलाके गलेमें हाथ डाल कर उसके सिरको अपनी छाती से लगा लिया। नहीं मालूम क्यों कमलाके नेत्रोंसे आसू गिरने लगे। किन्तु वीरेन्द्र को उस अन्धकारमें कमलाके अनिरिक्त और कुछ भी नहीं दिखलाई दिया। दोनों मौन थे, दोनों सोच रहे थे कि क्या कहें—इतनेमें गाड़ी खड़ी हो गई। कमलाने अपना सिर ऊपर उठाया। चन्द्रमाकी प्रभामे उसका सौन्दर्य्य और भी द्विगुणित रूपसे चमकने लगा। वीरेन्द्रने जल्दीसे उसके सुन्दर होठोंको चूमने के लिये ज्योंही अपना मुंह उसकी ओर बढ़ाया, त्योंहीं कोचवान ने नीचे उतर कर गाड़ीका दरवाजा खोल दिया। दोनों उतर पड़े।

टिकट वीरेन्द्र पहले ही ले आया था। दोनों जाकर अन्दर बैठ गये। खेल आरम्भ हुआ।

दोनों एक टक होकर देखने लगे—किस तरह फरहाद सबसे प्रथम शीरींके प्रेममें फंसता है और किस तरह शीरीं उसके इस पागलपन पर हंसती है। इसके बाद किस प्रकार शीरींके हृदयमें भी फरहादके प्रेमका अंकुर उगता है और धीरे-धीरे वे एक दूसरेके प्रेममें पागल हो जाते हैं। फरहादकी हिम्मतकी वे दोनों बड़ी प्रशंसा करने लगे जब कि वह पर्वतको तोड़नेका बीड़ा उठाता है। सब कुछ कर चुकनेके बाद भी जब ये दोनों प्रेमी प्रेमकी आगमें जलते हुए रह जाते हैं और फिर भी इस संसारमें उनका मिलन नहीं हो पाता। यह सब देख कर उन दोनों कमला और वीरेन्द्रके नेत्र भर आये। अन्त में फरहाद गाता है—

फाड़े न पत्ती भर भी गहन मेरी [illegible] में
[illegible] हो [illegible] पे दीदारकी हसरत में—

और अन्तमें कहने लगता है—

कभी तो [illegible] है [illegible]
आरामसे सोते हैं अब गोदमें [illegible] में।

इस पर दोनोंके नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे। वीरेन्द्र बोला [illegible] प्रेमकी [illegible] लगती है, उसका फिर [illegible] [illegible] है।

[illegible]

[illegible]

* * *

मनुष्यके जीवनमे कभी-कभी अकस्मात् कई घटनायें ऐसी हो जाती हैं जो उसकी आशा के परे होती हैं। जिनकी कल्पना तक वह नहीं कर सकता। यदि उसी अवस्थामें किसी दूसरे मनुष्यको वह देखता है, तो उसके लिये दुष्ट, नीच, पतित आदि ऐसे कितने ही विशेषणोंका व्यवहार करनेमे वह तनिक भी नहीं लजाता, किन्तु समय जब वही कार्य उसीके हाथों करवा देता है तो वह सन्न रह जाता है। उसीकी समझमें नहीं आता कि यह क्या हुआ! वह स्वयं ही अपनी एक पहेली बन जाता है। यही हाल ठीक कलाका था। गाड़ी जितनी तेजीसे दौड़ रही थी उससे भी जल्दी कलाके हृदयमे नाना प्रकारके विचार दौड़ लगा रहे थे। वह स्वयं ही सोचती थी और स्वयं ही अपनी बातोंका समाधान भी कर लेती थी। गाडीके आगरा स्टेशनपर पहुंचनेमें अब केवल घण्टे भरकी ही देर थी। वह उठी और झट अपनी धोती आदि ठीक करके पुनः अपनी जगह पर बैठ गई। सोचने लगी वीरेन्द्र मुझे देखते ही जब 'भाबी' कह कर गले लगेंगे, तब मैं उनके चरणोंमे अपना सिर रख कर कह दूंगी-अब तुम्हीं मेरे प्राणोंके अधार हो। यदि संभालो तो संभलूं नहीं तो मृत्यु अनिवार्य है ही। उस समय वीरेन्द्र जरूर रोकर मुझे गले लगा लेंगे, मेरे आसू पोंछेंगे। ओह! वह समय मेरे सोहागका समय होगा-मेरे जीवनकी वह पूर्णिमा होगी। वह बार-बार परमात्मा को मनाने लगी। गाडीकी चाल उसको बहुत ही धीमी प्रतीत हो रही थी। इतनेमे गाडी यमुना नदीके ऊपर पुल पर आ गई। सामने लाल किला दिखलाई दिया। किला-स्टेशन पर उतरने वाले सभी

यात्री अपना-अपना सामान ठीक करने लगे। कला भी उठी। एक बार अपनी धोतीकी सिकुड़नों को हाथसे ठीक करके पुनः अपने स्थान पर बैठ गई। उसके पास और रक्खा ही क्या था ? बाकी इस दुनियामें और उसके पास जो कुछ भी धन था, वह आगरेमें ही था। वह यही परमात्मासे माग रही थी कि वह धन मुझे सकुशल मिल जाय। गाड़ी स्टेशन पर लगी। मुसाफिर उतरने लगे। वह भी उतरी। टिकट बाबूके हाथमें टिकट पकड़ा कर वह ज्योंही आगे बढी कि टिकट बाबू बोला,-सुनो !

जी–कह कर कला पीछे मुड़ी। मानो कोई बड़ा भारी अपराध किया हो।

आप अकेली है क्या ? वह बोला।

कलाने कहा—जी हाँ, फिर बोली मेरे आदमी यहीं रहते हैं।

एक अजीब हंसी हंस कर वह दुष्ट उसकी ओर देखने लगा। कला अब ज्यादा देर वहां खड़ी नहीं रह सकी। वह तेजीसे बाहर चली गई। सोचने लगी इसका कोई दोष नहीं, मेरा ही दोष है। मेरे भाग्यमें यही लिखा था। दुनियां मुझ पर हंसेगी, थूकेगी। मुझे चुप होकर सब सहना होगा।

वह स्टेशनसे बाहर चली तो आई। किन्तु अब कहां जाय—किधर जाये, उसको कुछ भी अन्दाज नहीं आया। वह केवल आगरा कालेजका पता जानती थी, बस इसके अतिरिक्त और उसको कुछ भी मालूम नहीं था। किन्तु आगरा कालेज किस ओर है, उसको मालूम नहीं था। किसीसे पूछने की हिम्मत भी नहीं होती थी। धीरे-धीरे

कदम बढ़ा कर वह एक इक्के वालेके पास आई। सैकड़ों और इक्के, तांगे वाले चिल्ला पड़े। कोई—मां कहता था, कोई बूआ कहता था। कोई तांगे वाला कहता चलिये तांगेमें ले चलूं—बहुत सस्ते दाम हैं।

कमला बिना कुछ कहे सुने चार आनेमें एक इक्का ठीक करके चल दी। इक्के वाला हटना-बचना भाई! की आवाज लगाता हुआ आगे बढ़ रहा था। कला बाजारमें, रास्तेमें, आंखें फाड़-फाड़ कर चारों ओर देख रही थी कि उसका जीवनधन उसे दिखलाई दे। बार-बार कभी अपनी ओर देखती थी—कभी बाजारकी ओर और कभी अनन्त नीलकाशकी ओर। उसको स्वयं ही कभी-कभी यह घटना जादूकी प्रतीत हो रही थी। जैसे कोई अज्ञात शक्ति उससे यह सब करा रही हो। देखते-देखते आगरा कालेजकी लाल पत्थरसे बनी हुई विशाल इमारत दिखलाई दी। इक्के वालेने कहा—यही आगरा कालेज है।

इक्का खड़ा हुआ, कला उतरी। इक्के वाले को मजदूरी दे कर वह वहीं खड़ी हो गई। यह कालेज उसे देव मन्दिरकी तरह प्रतीत हो रहा था। दिनके दो बजेका समय हो गया। प्याससे उसका कण्ठ सूख रहा था। बार-बार नेत्रोंके आगे अन्धेरा छाने लगा। चक्कर पर चक्कर आ रहे थे। क्या करूं-किससे पूछूं? वह सोचने लगी। इसी मन्दिरमें मेरा देवता छिपा है—कौन बतायगा, कि वह कहां है। प्राणेश! आओ मेरे इस मुर्झाये हुए हृदयमें अमृतका सिंचन करो—मेरे कमजोर दिलकी उदासी और खिन्नताको दूर करो! मेरे सर्वस्व! हाय! मेरा कण्ठ सूख रहा है—हृदय धड़क रहा है, सिर घूम रहा है

प्यारे आओ ! दासीको अब और अधिक न सताओ। लाख रोकने पर भी कम्बख्त आंसू निकल ही पड़े—वह पछाड़ खाकर गिर गई। कालेजका चपरासी सामने बैठा था, वह दौड़ा हुआ आया। देखा उसके दाँत कसे हुए थे-मुंहकी घिग्घी बंधी हुई थी। आँखें पथरा गई थीं। वह दौड़ा हुआ अपने कमरेमें गया और जल्दीसे एक लोटा पानी और हाथमें पंखा लेकर आया। उसने कलाके चेहरेपर पानीके छींटे दिये और पंखा झलने लगा—पर सब व्यर्थ।

इतनेमें कालेजकी घण्टी बजी। लड़कोंको छुट्टी हुई। एक-एक करके सारा मैदान कालेजके विद्यार्थियोंसे भर गया। सभी एक-एक कर उसी स्थानमें आने लगे, जहां कला अचेत—मूर्छित पड़ी थी। कोई कहता हाय ! कितनी भाग्यहीन है-मरनेके लिये भी ऐसा स्थान मिला-जहां कोई दो बूंद आँसू गिराने वाला भी नहीं। कोई कहता हटो भाई हवा आने दो—कोई कुछ कहता कोई कुछ।

इतनेमें वीरेन्द्र भी वहां आया। भीड़को चीर कर वह वहीं जा पहुंचा। उसको यह सुन्दर मुख परिचितसा जान पड़ा। वह एकदम पास जाकर देखने लगा—कलाका चेहरा देखते ही उसके हृदयमें धक्-सी हुई और वह 'भाबी' कह कर बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ा। विद्यार्थियोंको अब मालूम हुआ कि यह वीरेन्द्रकी भाबी है। वे जल्दीसे एक स्ट्रेचर मंगा कर उन दोनों अभागोंको कालेजके एक कमरेमें ले गये। मुख पर पानीके छींटे पड़ने और हवाके लगने से वीरेन्द्रकी मूर्छा टूटी। वह उठा और कलाका सिर अपनी गोदमें रख कर घिघियाती आवाजमें बोला—भाबी ! कलाके नेत्र एक बार

कुछ खुलतेसे दिखलाई दिये, किन्तु उनसे पानी बह रहा था। वीरेन्द्रने फिर कहा,—'हाय भावी !' कलाके चेहरेसे मालूम होता है कि वह कुछ बोलना चाहती है, किन्तु बोल नहीं सकती। उसने एक बार फिर आँखें खोलीं और उसी क्षण केवल दो ही हिचकियोंमे उस भाग्यहीनाके जीवनका फैसला हो गया ! वीरेन्द्रके लिये यह एक ऐसी चोट थी, जिसे वह सह नहीं सकता था। पर क्या करता ? विधाताका विधान ही ऐसा था। कलाकी अन्त्येष्टि करके वह घर आया तो पिछले दिनों की कलाकी एक।एक बात याद करके वह छट-पटाने लगा। वह सोचने लगा—हाय ! केवल मुझ दुष्टके कारण ही भावीकी यह गति हुई। इस पर भी हम दोनों मिलने भी न पाये थे, कि क्रूर काल उसे छीन ले गया। हाय ! मैं कितना नीच, कितना पतित और कितना दुष्ट हूं। बेचारी भावी मेरे लिये संसारसे बदनामी लेकर चली गई और मैं एक वेश्याके पीछे दीवाना बना हुआ हूं ! यह विचार आते ही वह उठा और सीधा कमरे से बाहर निकल गया। सामने एक हरे खेतमे कुछ गायें चर रही थीं। एक अज्ञात शक्तिसे प्रेरित होकर उधर ही बढ़ा। इसके बाद उस खेतको भी वह पार कर गया। उसके पैरोंमे जैसे चक्र लग गया था। हृदयमे असह्य पीड़ा हो रही थी। वह सीधा चला जा रहा था। कहा ? इसकी उसको स्वयं कुछ भी खबर नहीं थी। उस बस्ती की हवामें जैसे उसका दम घुट रहा हो। वह सीधा चला जा रहा था। कहां ? इसका पता नहीं।

* * * *

पहली रातको कमलाने बड़ा साहस करके वीरेन्द्रसे कहा था,—प्राणेश, क्या हम दोनों संसारके सामने एक प्रेम-सूत्रमें बँध नहीं सकते ? क्या हम दोनोंको सदा इसी तरह रहना पड़ेगा ?

वीरेन्द्र कमलाका अर्थ समझ गया था। आज रातको वह कमलाको अपनी बना लेगा, यह निश्चय किया गया था।

कमला आज फूली नहीं समाती थी। वह सोचने लगी आजसे संसारकी पवित्र स्त्रियोंमें मेरा भी नाम दर्ज हो जायगा। आजसे मैं भी सद्‌गृहणी कहलाऊंगी। ओह ! आज मेरा जीवन धन्य हो जायगा। मेरे मुख पर पुतनेवाली कालिमा अब मेरा स्पर्श नहीं करने पायेगी। यही सब सोच-सोच कर वह फूली नहीं समाती थी।

पर हाय ! मूर्खे ! तुमको नहीं मालूम कि मनुष्य जो कुछ सोचता है, निष्ठुर दैव उसको एक ही क्षणमें उलट देता है।

प्रायः दो बजेका समय था। कमला अपना बक्स खोल कर आजकी रातको पहननेके लिये साड़ी चुन रही थी। और वह अपने इस कार्यमें इतनी व्यस्त थी कि उसकी मांने दो तीन बार 'बेटा-बेटा' कहा पर उसने नहीं सुना। इसके बाद उसकी मां स्वयं वहां पर उपस्थित होकर चुपचाप खड़ी हो कमलाकी ओर देखने लगी। आज कमला उसको अद्वितीय सुन्दरी प्रतीत हो रही थी। देखते-देखते एकाएक किसी आशंकासे उसका कोमल हृदय काँप उठा। वह सोचने लगी क्या वीरेन्द्र कमलाको आज अपनी बना कर ले जानेके बाद फिर इस नरककुण्डमें आने देगा ? कदापि नहीं। फिर कमला-स्वर्गीय आननकी कुहुकती हुई कोयल होगी और मैं संसारके

नेत्रोंमें पतिता, दुराचारिणी वेश्या, फिर भला कमला मेरे पास क्यों आने लगी। हाय! फिर मैं कमलके बिना कैसे जीऊंगी। जिसके चेहरेको देखे बिना, जिसकी मधुर वाणीको सुने बिना मेरे चक्षु और नेत्र व्याकुल रहते हैं, उसी अपनी प्राणोंसे भी प्रिय बेटीको मैं कैसे जाने दूंगी, ओह ईश्वर! तूने मेरे सामने एक समस्या उपस्थित कर दी। ऐसा सोचते-सोचते एकाएक उसके मुंहसे निकल पड़ा, 'कमला' कमलाने चौंक कर पीछेकी ओर देखा। उसकी मा खड़ी थी। वह बोली–मा! सुशीलाके कण्ठसे बड़ी कठिनाईसे निकला–बेटा और आंखोंसे आसानीसे निकले आंसू। कमला दौड़कर मांकी गोदमें चिपट गई। दोनोंके नेत्रोंसे झर-झर आंसू बहने लगे।

थोड़ी देरके बाद दिलका कुछ बोझ हलका पड़ जाने पर सुशीला ने कहा—बेटा, आज तुम चली जाओगी–इसके बाद थोड़ी देर रुक कर रुमालसे नेत्र पोंछ पुन: बोली--क्या फिर तुम अपनी इस अभागिनी मा को भी कभी याद करोगी?

कमलाके नेत्र पुनः भर आये। वह बोली—क्यों मा, अपनी जननीको भी क्या कोई भूल सकता है?

सुशीलाने भीगी हुई आवाजमें कहा—बेटा इस मा को भूलनेमें ही तुम्हारा हित है। इसके बाद उसने बड़े जोरसे बेटीको अपने हृदय से लगा लिया और दोनों मग्न होकर आँसू बहाने लगीं।

इतनेमें नौकरने आवाज दी—सरकार।

सुशीला आवाज सुनते ही बाहर आई। कमला एक सुन्दर बैंगनी रंग की साड़ी पहन कर सामने टंगे हुए एक विशाल शीशेमें

सामने खड़ी होकर अपना रूप निहारने लगी। आज उसकी प्रसन्नताका पारावार न था। मानो जन्मान्धको फिर नेत्र मिल गये हों। वह इसी दशामें कभी बाहर, कभी भीतर आने जाने लगी। समय हो गया था, किन्तु वीरेन्द्र अभी तक नहीं आया। एक हल्की-सी चोट उसके हृदयमें लगी। आशंका की एक क्षीण रेखा उसके हृदय-पट पर खिंच गई। किन्तु इस आशंकाको वह जबर्दस्ती दबा देती थी। फिर घड़ीकी ओर देखा—सात बज चुके थे। सोचने लगी—शायद किसी और काममें फंस गये हों। उसके हृदयमें अपने आप नाना प्रकारके प्रश्न उठते थे और स्वयं ही वह उन सबका समाधान भी कर लेती थी।

यद्यपि कमला वीरेन्द्र पर अविश्वास नहीं कर सकती थी, किन्तु पुरुष जाति सदा ही निष्ठुर एवं स्वार्थी हुआ करती है। यह बात कितने ही मुंहोंसे सुन चुकी थी। रह-रह कर यही ख्याल उसके मस्तिष्कमें चक्कर लगाने लगा। क्या वीरेन्द्र बाबू भी मेरे साथ छल करेंगे? क्या मुझे इसी प्रकार तड़पती छोड़ कर वे चले जायेंगे! क्या मेरे इस भग्न हृदयको ठुकरा कर वे तमाशा देखेंगे। नहीं—विश्वास नहीं होता। उनके पास भी हृदय है। उस हृदयमें भी सहानुभूति है। फिर क्या आज बिना कारण वे मुझे एकदम भूल जायेंगे ....

यही सब सोचते-सोचते उसके दोनों नेत्रोंसे अविरल अश्रु बहने लगे। आह! प्रेमकी लपट कितनी भयङ्कर होती है, आज उसे पता लगा। लाख धीरज दिलाने पर भी उसका हृदय शान्त नहीं

होता था। वह धीरेसे उठी। कलाई पर बंधी हुई घड़ीकी ओर देखा। नौ बजनेमें केवल पाच मिनट बाकी थे। अब क्या करे ? वीरेन्द्रकी [illegible] पर अब उसे जरा भी सन्देह न रहा। वह मन ही मन पुरुषोंको भला बुरा कहने लगी। पुरुष जातिकी ओरसे उसका कोमल हृदय विद्रोही हो उठा। हृदयकी धड़कन और भी तेज हो गई। जरा भी आहट पाती, समझती वीरेन्द्र आ गया. किन्तु दूसरे ही क्षण उसे न देख क्षुब्ध एवं व्यग्र हो जाती। वह इसी अवस्थामें पड़ी हुई करवटें बदल रही थी, आवाज आई—कमल !

कमलने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वह उसी अवस्थामें अचेत-सी पड़ी रही। सुशीलाने फिर कहा—कमल !

अबकी बार कमलने कुछ काँपे कण्ठसे उत्तर दिया। 'माँ !'

[illegible] हुए सुशीलाने कमरेमें प्रवेश किया। देखा कमला [illegible] हुए [illegible] से [illegible] हैं। सुशीला [illegible]। चुपचाप जाकर [illegible] सिर पे [illegible] अपना [illegible] हुए कहा—[illegible]

[illegible]

[illegible]

अन्तमें बिना किसी संकोचके वह कहने लगी बेटी,—एक साधारणसी बातके लिये तुम इतनी दुखी क्यों हो रही हो ?

कमला एकाएक बोली—साधारणसी बातके लिये माँ !

सुशीला बोली—हां बेटा ! हम लोगोंके लिये यह एक साधारण ही घटना है। इसी लिये तो हमारी अन्य बहनें पुरुषोंको ठगना ही अपना मुख्य उद्देश्य समझती हैं।

किन्तु वीरेन्द्र बाबूको मैं ऐसा नहीं समझती थी माँ ! कमलाने केवल इतना ही कहा,—उसके नेत्रोंसे फिर आंसू बहने लगे।

सुशीला भी अब अपनेको ज्यादा नहीं संभाल सकी। अपनी इकलौती प्राणोंसे भी प्यारी बेटी की यह दशा देख उसके नेत्र भी भर आये। धीरेसे रुमाल निकाल कर उसने अपने और अपनी बेटी के आंसू पोंछे फिर बोली—बेटी, आओ उस कमरेमें चलें। कमलाने और कुछ नहीं कहा—सामने बिछी हुई पलंग पर लेटती हुई बोली,—मां, मुझे सोने दो—सुशीला भी उसकी बगलमें ही लेट गई।

([illegible])

पौ[illegible] महीना था। [illegible] [illegible] [illegible] थी। [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible],—बाबूजी, आपने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

बालककी जीत हुई। रमेश उसकी अकेले चले जानेकी धमकी की अवहेलना न कर सका। और बच्चोंको साथ लेकर उसी मैदान की ओर बढ़ा, जहां साधुओंके अखाड़े लगे हुए थे। एक-एक कर सभी साधुओं और भक्तोंको उसने जीवनको दिखलाया। अन्तमें वे लोग उस अखाड़ेके पास आये जहाँ दो माताएं बैठी हुई भगवद्गीताका पाठ कर रही थीं। उनमें एककी अवस्था प्रायः चालीस वर्षकी थी और दूसरी अभी यौवनकी प्रथम सीढ़ीमें पैर रख रही थी। उनके आगे सैकड़ों मनुष्योंकी भीड़ सदा लगी रहती थी। उन्होंने संसार छोड़ दिया था, किन्तु संसार अभी भी उनका पिण्ड नहीं छोड़ता था। उनकी ओर देखकर कोई कुछ कहता था कोई कुछ। अस्तु।

रमेशने अपने बेटेको गोदमें उठा कर पूछा—देख लिया ?

हां बाबूजी, । देख लिया कुछ देर रुककर फिर बोला,—बाबूजी वे महात्मा कहां हैं ?

रमेश उधर ही बढ़ा। कुछ ही देरमें वे दोनों उस स्थान पर आ गये जहां वे महात्मा दोनों आंखें मूंदे ध्यानमें मग्न थे। रमेश एक टक उनकी ओर देखता रहा। उसे यह मूर्ति परिचित-सी मालूम होती थी। वह प्रायः आध घण्टे तक निर्निमेष नेत्रोंसे उन्हींकी ओर देखता रहा। थोड़ी देरमें साधुका ध्यान टूटा। उन्होंने एक वार बालककी ओर देखा। साधुके देखते ही बालकने दोनों हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम किया। महात्माजी बोले 'चिरंजीवी हो बेटा।'

रमेश ने आवाज़ पहचान ली। उसे अब ज़रा भी सन्देह न रहा। हो न हो ये महात्मा वीरेन्द्र ही हैं, इस भावना ने उसके हृदय में बड़ी मज़बूत जड़ जमा ली। पर अभी भी उसमें कुछ बोलने का साहस उसे नहीं हुआ। वह बिना कुछ कहे सुने हाथ जोड़ कर चुपचाप अपने घर आ गया।

घर आकर उसने उस महात्मा का सारा हाल अपनी माँ से कहा और बोला—माँ निस्सन्देह वह वीरेन्द्र भैया ही है।

वीरेन्द्र का नाम सुनते ही बुढ़िया के नेत्र भर आये। धीरे से आँचल से आँसू पोंछ कर बोली—बेटा आज मुझे भी ऐसा ही लगता।

राजी न हुआ तो सन्ध्या को रमेश अपनी माँ और बेटे को लेकर फिर उसी स्थान पर आया। आते ही सदा की तरह उसने महात्मा को प्रणाम किया और कुछ देर चुपचाप उनकी ओर देखता रहा, फिर बोला—महात्मा जी, क्या मैं आपसे दो एक बातें पूछ सकता हूं ?

खुशी से बेटा ! महात्मा ने स्वाभाविक हँसी हँस कर कहा।

रमेश ने पूछा—महात्मा जी आपका निवास स्थान ?

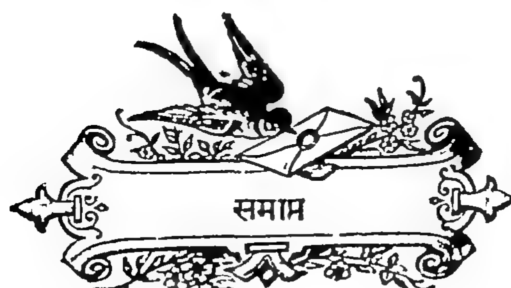
साधु ने फिर उसी प्रकार हँस कर कहा—साधुओं का भी क्या कोई निवास स्थान होता है ?

आपने संन्यास कब से लिया ? रमेश ने फिर पूछा—

साधु ने एक ठण्डी सांस ली और ऊपर फैले हुए अनन्त नीलाकाश की ओर देखने लगा। थोड़ी देर में बोला—भाई, बहुत समय हुआ, इतना कह कर वह फिर चुप हो गया।

वे दूसरे दिन फिर आने का वायदा कर वहाँ से चले आये।

सवेरे उठ कर जब रमेश वहाँ गया तो सब आखाड़े जनशून्य थे।



प्रायश्चित्त



(सामाजिक उपन्यास)

लेखक :—

पं० नित्यानन्द पन्त



प्रकाशक :—

पन्त एण्ड को०

१०० हरीसन रोड

कलकत्ता ।



बार] संवत् १९९० [मूल्य ॥)

प्रकाशक :—
पन्त एण्ड को०
१०० हरीसन रोड
कलकत्ता ।

मुद्रकः—
रत्नाकर-प्रेस
११, ए सैयदसाली लेन
कलकत्ता ।

प्रायश्चित्त

(१)

वह युवक था। उसके हृदयमे उत्साह था, शरीरमें स्फूर्ति थी और चेहरे पर थी कान्ति। सुन्दर सुडौल देह, लम्बी और उठी हुई नाक, विशाल नेत्र, टेढ़ी भौंहें साधारण से साधारण मनुष्य को भी उसकी ओर एक बार देख लेने पर पुनः देखने के लिये वाध्य कर देती थी। वास्तवमें वह ऐसा ही दर्शनीय था। अपने घरका वह प्राण था, मित्रोंका खिलौना था, सहपाठियोंका गौरव था और अपने दर्जेकी शोभा था। वह कलकत्तेके सिटी कालेजमें थर्डइयर (Third year) का विद्यार्थी था। उसका नाम था वीरेन्द्र।

वीरेन्द्रके पिता लाला दीनदयाल कलकत्तेके नामी व्यापारी थे। कलकत्तेमें निजका मकान था। घरमें विपुल सम्पत्ति थी। वीरेन्द्र ही उनका एकलौता पुत्र था। वही लाला दीनदयालकी आशा थी, वही उनके जीवनका एकमात्र सहारा था। घरमें नौकर-चाकरोंके अतिरिक्त तीन ही प्राणी थे। लाला दीनदयाल, उनकी पत्नी तथा पुत्र वीरेन्द्र। वीरेन्द्र अभी तक कुंवारा ही था। कई बार उससे ब्याहके लिये कहा गया, किन्तु वह अपनी जिद पर अड़ा रहा और शादीके नाम पर सदा नाक-भौं ही सिकोड़ता रहा। उसके माता-पिता भी उसका हृदय दुखाना नहीं चाहते थे। यद्यपि उनके हृदयमें पुत्रवधू देखनेकी उत्कट अभिलाषा थी, किन्तु वीरेन्द्र को वे किसी भी प्रकार राजी नहीं कर सके। एक ही लड़का है कहीं भग जाय तो यह भय उन्हें ज्यादा कुछ कहने भी नहीं देता था।

वीरेन्द्र जितना ही देखनेमें सुन्दर था उतना ही बुद्धि का भी तेज था। अपने क्लासमें सदा फर्स्ट रहा करता। यही कारण था कि उस कालेजके सभी प्रोफेसर वीरेन्द्र से प्रसन्न रहा करते थे। वह बिल्कुल निश्चिन्त और सुखी था।

किन्तु हाय! कुटिल दुर्भाग्य उसकी उन्नति, उसका सुख, उसकी निश्चिन्तता को न देख सका। भाग्यने पलटा खाया। उसकी जीवन-नौका जो आज तक बे रोक टोक सुन्दर-शान्ति एवं गम्भीरता पूर्वक अपने पथ पर चली जा रही थी, अचानक तूफान आ जाने पर डगमगाने लगी। जितना ही वीरेन्द्रने उसे बचा कर चलाना चाहा, उतना ही वायुके प्रचण्ड वेगके कारण वह कच्ची नौका

उसको इच्छाके प्रतिकूल उसे बरबस ठीक भँवरके बीच ले गई।

अक्टूबरका महीना था। पूजाकी छुट्टियोंमें कालेज बन्द था। कलकत्तेमें यों ही प्रति दिन काफी चहल पहल रहा करती है, उस पर पूजाके दिनोंमें तो और भी रौनक बढ जाती है। शहरकी दूकानें खूब सजी रहती हैं। गाँव-गाँवसे लोग आकर पूजाके लिये अपने बच्चों को कपड़े तथा अन्य वस्तु खरीदते हैं। ऐसी चहल पहल सदा नहीं रहती। उन दिनोंकी शोभा वास्तवमें देखने योग्य होती है। वीरेन्द्र अपने मित्र केदारके साथ घूमने निकला।

सन्ध्याके ७ बजे होंगे। सारा शहर बिजलीकी असंख्य बत्तियों से जगमगा रहा था। छोटे-छोटे बालकोंको लिये हुए कुछ लोग बाजार करने आ रहे थे, कुछ दूकानोंमे बैठे मोल कर रहे थे और कुछ सौदा खरीद कर घर लौट रहे थे। वीरेन्द्र और केदार आपसमे कालेजके प्रोफेसरोंके सम्बन्धमे टिप्पणी करते हुए चले जा रहे थे।

केदार वीरेन्द्र का सहपाठी था और साथ ही पड़ोसी भी। दोनोंमें खूब घनिष्टता थी। बल्कि कहना चाहिये दोनों एक प्राण दो शरीर थे।

केदारके पिता एक सरकारी आफिसमे २००) माहवारी वेतन पर मुलाजिम थे। केदारके तीन भाई और थे। दो उससे बड़े और एक छोटा। छोटे भाईका नाम था रमेश। रमेशने इसी वर्ष मैट्रिक पास किया था। केदार की शादी हुए तीन वर्ष हो गये थे। सुशिक्षिता,

गृहकार्यमें दक्ष, देखनेमें सुन्दर बहू पाई थी। नाम था कला। केदार वीरेन्द्रसे दो वर्ष बड़ा था। इसलिये वीरेन्द्र कलाको भावी कह कर पुकारा करता था।

कुछ दूर चले जाने पर वीरेन्द्रने कहा,—'हां तो केदार! अबकी पूजा भी यहीं बिताओगे क्या?'

केदारने मुस्कुरा कर कहा—'और कहां जॉय? पूजामें तो यहीं रौनक रहती है।'

वीरेन्द्रने फिर कहा—'नहीं' मित्र, इस वर्ष इच्छा होती है कि कहीं बाहर चला जाय।

'कहां चलोगे?'

'कलकत्ते से बाहर, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।'

'अच्छा ताजमहल देखने आगरा चला जाय।'

'बहुत ठीक; कब चलोगे?'

केदारने कुछ सोच कर मुस्कुराते हुए कहा–'यह तो तुम्हारी भावीसे सलाह करके बताऊंगा।'

'हॉ भाई! ठीक ही कहते हो, यही तुम्हारे लिये उचित भी है, वीरेन्द्रने हँस कर उत्तर दिया।

इसके बाद कुछ देरके लिये दोनों शान्त हो गये। दोनोंके माथे में ताजमहल घुसा हुआ था, वीरेन्द्र सोचने लगा—बड़ा आनन्द आयगा। हम दोनों गाड़ीमें बैठ कर जिस समय जाने लगेंगे बहुत से मित्र हमें पहुंचाने स्टेशन आयँगे। एक तो वही रेशमी पोशाक रखूंगा और दूसरी गरम ऊनी। यहां से इसीको पहन कर जाऊंगा।

स्टेशनों पर बड़ी धूम रहेगी। फिर सोचता यदि भावीने केदारको मना कर दिया तो—

फिर दृढ़ होकर कहता, नहीं मैं भावी को राजी कर लूंगा।

उधर केदार सोचता—आनन्द तो आयगा जरूर पर कला साथ आना नहीं छोड़ेगी। उसे यदि साथ ले जाऊं तो खर्च बहुत पड़ जायगा। साथ ही एक झञ्झट भी बढ़ जायगी। अकेलेमें जो आनन्द आयेगा वह कलाको साथ में लेकर नहीं। मगर वह मानेगी नहीं। तब ·· वह सोचता रहा। अचानक वीरेन्द्र बोल उठा—'चलो लौट चलें।'

'हां काफी दूर आगये'

समय भी तो बहुत हो गया।'

'कितने बजे हैं ?'

'नौ बज कर दस मिनट' वीरेन्द्रने कलाईमें बँधी हुई घड़ीकी ओर देख कर उत्तर दिया।

'अच्छा! नौ बज गये।' केदारने चौंक कर कहा,—

'दस मिनट ऊपर हो गये' वीरेन्द्रने गम्भीर होकर उत्तर दिया।

दोनों लौट पड़े। आगरेकी यात्रा पर विचार करते हुए जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा कर वे दोनों घर आ गये। वीरेन्द्रका मकान गली के सिरे पर था। और केदार मध्यमे किराये के मकान पर रहता था। वीरेन्द्रके मकानकी ओरसे ही वे गलीमें घुसे। अपने मकानके पास पहुंचने पर वीरेन्द्र बोला,—'केदार! जैसे बने भावीको राजी करके परसों ही चलनेका ठीक करो।'

केदार कुछ न बोला, वह कुछ सोच रहा था। वीरेन्द्रने फिर, कहा,—'फिर छुट्टियां भी तो थोड़ी रह जाती हैं। कहा भी है—'शुभस्य शीघ्रं'।'

केदारने कहा,—'बहुत अच्छा' और तेजी से आगे बढ़ गया।

दूसरे दिन सवेरे ही वीरेन्द्र केदार के घर पहुंचा। रास्ते भर सोचता जाता था भाबीने कहीं 'नाँही'न कर दी हो। सारा गुड़ गोबर हो जायगा। मगर भाबी मेरे कहने पर जरूर राजी हो जायगी। यदि केदार स्वयं ही टाल जाय तो दूसरी बात है। नहीं, केदार भी मेरा कहा नहीं बदल सकता। फिर आगरे का ध्यान आता, एकबार देहली जाने पर रास्ते में पडा था। लोगों ने दूर से दिखलाया था—यही ताज है। कितना सुन्दर था! अब के तो जरूर देखेंगे। यही सब सोचता हुआ वह केदार के घर पर आगया। आवाज दी-केदार। केदार अभी तक सोया ही था। वीरेन्द्र की आवाज सुनते ही कला बाहर आई। बोली- 'आइये'

कला जितनी सुन्दर थी, वीरेन्द्र भी उतना ही सुन्दर था। वास्तव में कला वीरेन्द्र को अपने सगे देवर से भी ज्यादा प्यार करती थी। जिस दिन वह न आता, कला उस दिन-नहीं मालूम क्यों-बडी उद्विग्न-सी हो जाती। वीरेन्द्र भी कला को अपनी ही स्नेहमयी भाबी की तरह प्यार करता। चाहे कितनी ही छिपाने योग्य बात क्यों न हो पर कला पर वीरेन्द्र उसे अवश्य ही प्रकट कर देता।

वीरेन्द्र अन्दर गया। केदार के कमरे में एक कुर्सी पर बैठ गया। सामने पड़ी हुई एक दूसरी कुर्सी पर कला बैठ गई। कला मुस्कुरा कर

कला जल्दीसे उठ कर अंदर चली गई। केदारने वीरेन्द्रसे पूछा—'इस समय कैसे आये ?'

'यही पूछनेके लिये कि क्या ठीक किया ? आज्ञा मिली या नहीं ?'

'आज्ञा तो मिल गई।'

'तब।'

'बस कल चलो।'

'बहुत ठीक—ज्यादा देर करना ठीक नहीं।' वीरेन्द्र बोला। इसके बाद कुछ देर तक उसी सम्बन्धमें बातें होती रहीं—आखिर क्या-क्या ले जाना होगा ? किस गाड़ीसे चलना होगा ? वहां ठहरने का क्या इन्तजाम होगा ?

वीरेन्द्र बोला—'दिल्ली एक्सप्रेससे चलना ठीक होगा। सीधे आगरे जाती है। रास्तेमें बदलनेका भी झंझट नहीं।'

केदारने पूछा—'कितने बजे जाती है ?'

सवेरे दस बज कर चालीस मिनट पर यहांसे रवाना होती है और ठीक दूसरे दिन सन्ध्याको पांच बजे आगरे पहुंचती है।'

'बस तो यही ठीक रहेगी।' केदार बोला।

दूसरे दिन दिल्ली एक्सप्रेससे जानेका पक्का विचार करके वीरेन्द्र घर लौट आया। अपने माता पिताको भी सारा कार्यक्रम बता दिया। उन्होंने भी वीरेन्द्रको जानेकी आज्ञा दे दी। साथमें एक नौकर तथा एक रसोइया भी कर दिया। दिन भर वीरेन्द्र और केदार सफर की तैय्यारी में ही लगे रहे। रास्तेके लिये सामान, वहां

पहुंचने पर किन-किन चीजोंकी जरूरत होगी आदिके चिन्तन में ही वह दिन बीत गया।

दूसरे दिन ठीक ६॥ बजे दोनों लड़के केदार और वीरेन्द्र मोटर मे बैठ कर स्टेशनकी ओर चल दिये। कला उनकी ओर देखती रही। उसकी दोनों आखोंमें आसू थे। बार-बार परमात्माको मनाती,— 'हे ईश्वर मेरे इन दोनों नेत्रोंको कुशलपूर्वक बहुत शीघ्र मुझे लौटा देना।' वह सोचती रही। मोटर ऑखोंसे ओझल हो गई। वह भी विवश हो अन्दर चली गई।

स्टेशन पहुंचे। गाडी लगी हुई थी। टिकट लिये पहले ही एक आदमी तैय्यार था। दोनो मित्र एक ड्योढे दर्जेके डिब्बेमें बैठ गये। रसोइया और नौकर अलग तीसरे दर्जेमे। गाड़ी चल दी।

*　　*　　*　　*　　*　　*

दूसरे दिन सन्ध्याको केदार और वीरेन्द्र आगराके किला स्टेशन पर उतरे। सामान आदि तागेमें भरवा कर वे दोनों तथा रसोइया और नौकर वहाके एक नामी होटलमें ठहरे। इस समय सम्भवतः केदार और वीरेन्द्र दो मे एक भी कलाको शायद ही याद करता होगा, किन्तु कलाके नेत्रोंमे उन दोनोंका चित्र एकदम अङ्कित सा हो गया था। हाय रे मनुष्य! तू कितनी जल्दी अपने आत्मजीवनको भूल जाता है? वास्तवमें मनुष्य रक्त, हड्डी और मांसके पुतले मनुष्यको प्यार करना कितनी बड़ी भूल है! ओह, पर शायद ही कोई प्राणी इस महान गलतीको न करता हो। अस्तु।

दूसरे दिन सवेरे उन दोनों (केदार और वीरेन्द्र) ने ताजमहल जानेका विचार किया। सन्ध्याको खाना खा करके वे अलग-अलग बिछी हुई दो पलंगों पर सो गये। केदार बोला,—वीरेन्द्र ! कलाको भी ले आते तो अच्छा होता, इतना कह कर वह सोचने लगा, बेचारी इस समय अकेली न मालूम क्या करती होगी ! खाना भी खाया या नहीं। जब आरहे थे उसी समय उसके दोनों नेत्र गंगा-यमुनाके उद्‌गम स्थान बने हुए थे। अब न मालूम उसका क्या हाल होगा—ऐसा सोचते-सोचते उसके दोनों नेत्र भर आये। धीरेसे और वीरेन्द्रसे छिपा कर उसने अपनी आँखें पोंछ डालीं, किन्तु वीरेन्द्रसे यह सब कुछ भी छिपा न रहा। वह चटसे बोल उठा—भाई केदार ! किसीने ठीक कहा है—स्त्रीकी याद बड़ेसे बड़े कर्मिष्ठ आदमीको भी डिगादेती है, फिर हंस कर बोला—पर भाई, मैं तुमको तो ऐसा नहीं समझता था। इतने अधीर क्यों हुए जाते हो ? एक ही महीने की तो बात है आखिर फिर वहीं तो जाना होगा।

केदार अबकी बार कुछ दृढ़ होकर बोला—तुमको तो वीरेन्द्र ! हमेशा मजाक ही सूझा करती है। भला बताओ इस समय तुमने मुझ में कौनसी ऐसी उद्विग्नता देखी ?

वीरेन्द्र बड़ा वाक्‌चतुर था। उसने केदारको ज्यादा कष्ट पहुंचाना नहीं चाहा। वह जान गया था कि इस समय केदारका मन कलाकी यादमें एकदम चंचल हो रहा है। अतः प्रसंग बदलनेके उद्देश्यसे वह बोल उठा--हाँ, तो ताजमहल कब चलोगे ?

मुर्दे मनसे केदार बोला, कल सवेरे ही चलो न, यहां करना ही क्या है ?

'तो फिर कल ही चलो' कह कर वीरेन्द्र करवट बदल कर सो गया। केदार भी सो गया, किन्तु उसको कलाकी याद बुरी तरह सता रही थी। इस समय कलाकी अनुपस्थिति उसके लिये एक ऐसी शराब हो गयी थी, जिसको पीनेसे आदमी व्याकुल हो जाता है। रह-रह कर उसको कलाका चेहरा, उसकी मधुर मुस्कान, मनोहर वाणी, सुन्दर सजे हुए केश आदि सभी चीजें सिनेमाकी फिल्मोंकी तरह उसके नेत्रोंके आगे आने लगे। इसी समय धीरे-धीरे उसको नींद आ गई। किन्तु नींदमें भी कलाने उसका पीछा नहीं छोड़ा। स्वप्नमें वह देखता क्या है—कला रो रही है। उसने खाना भी नहीं खाया है। वह कह रही है प्यारे! तुमने व्याहके समय मन्त्रोंमें और एक रात अपने मुंहसे कहा था जीतेजी मैं तुमसे अलग नहीं होऊंगा। पर आज—ओह इतनी जल्दी आपकी प्रतिज्ञा किधर गई ? इतना कह कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। इतनेमें केदारने झटसे अपने हाथ फैला कर उसको उठाना चाहा। वह चौंक कर उठ बैठा। सामने वीरेन्द्र सोया था, किन्तु कलाका वहां कहीं ठिकाना न था। वह बहुत लज्जित हुआ। फिर ख्याल आया ओह: मैं कितना दुर्बल हूं ? स्त्री की यादमें इस तरह छटपटा रहा हूं। नहीं—अब नहीं—अब मैं ज्यादा कमजोर नहीं बनना चाहता। यह कह कर वह अपनेको और दृढ़ बना कर सो गया। पर हाय! वह रात, उस रातका एक-एक घण्टा और उस घण्टेका एक-एक मिनट उसके लिये पीड़ा थी। किसी

भी तरह उसे चैन नहीं पड़ता था। इसी तरह वह बिस्तरे पर छटपटाता रहा और कठोर एवं निष्ठुर निद्रा भी दूरसे ही उसकी यह दशा देख-देखकर हंसने लगी। अन्तमें रातके प्रायः तीन बजे निद्रा-देवीको—आखिर स्त्री ही ठहरी, दया आ गई, केदार भी सो गया।

वीरेन्द्र दूसरे दिन सबेरे ही उठ बैठा, किन्तु केदार अभी तक सोया ही था। वीरेन्द्र समझ गया कि इसको रातको नींद नहीं आई है अतः उसने केदारको नहीं जगाया। वह प्रातःकर्ममें लग गया और उन कर्मोंसे निश्चिन्त होकर जब वह कमरेके अन्दर बढ़ा ही था कि केदारकी नींद खुल गई। वह चौंक कर उठ बैठा और वीरेन्द्रसे बोला–ओहो! ज्यादा देर हो गई क्या? कुछ देर रुक कर फिर बोला तुम तो जल्दी जाग गये थे, मुझे भी क्यों न जगा दिया?

वीरेन्द्र पहले तो कुछ न बोला, किन्तु इस वार उत्तर देना आवश्यक समझ कहने लगा—यहां भी क्या हमें जल्दी ही बनी रहेगी, और हमें जाना ही कहां था जो तुम्हें उठा लेता?

इसके बाद केदार कुछ न बोला और सीधा लोटा लेकर नित्यकर्मके लिये चल दिया।



करीब ६ बजे होंगे। पुराने जमानेके मुगल शासकोंकी कीर्तिको दर्शाने वाला ताज तथा एक बादशाहका अपनी प्यारी बेगमकी यादको बनाये रखने वाला ताज, प्रातःकालकी मनोहर धूपमें चमकता हुआ खड़ा था। दिन भरमें सैकड़ों नहीं हजारोंकी संख्यामें लोग अपनी स्त्री और बच्चोंको लेकर यहां आते हैं और एक बार इसके बनाने वाले कारीगरों तथा मुगल सम्राट् शाहजहाँकी प्रशंसा करके चले जाते हैं, किन्तु यह भोला ताज सैकड़ों वर्षोंसे इसी प्रकार अविचल एवं शान्त उसी स्थान पर खड़ा है। इसकी सिसकियोंको यमुना इसके बगलमें ही रोकर गुजरती है, किन्तु आज तक कभी भी इसने ताजके धूपसे चूमे हुए ओठों पर [illegible] नहीं दिया था। खैर!

इतने में एक तांगे पर सवार होकर केदार और वीरेन्द्र भी आ पहुंचे। तांगा खड़ा हुआ। दोनों भाई उतर कर फाटकके अन्दर घुसे। वह चले जारहे थे, किन्तु उनके नेत्र सामने खड़े हुए ताजकी ही ओर थे। वे इस अद्‌भुत एवं मनोहर इमारतको देख कर दंग रह गये। वह सोचने लगे—हमारे देशमें हां इसी भारत देशमें, ऐसे-ऐसे कला-कौशलमें निपुण कारीगर मौजूद थे, किन्तु आज यहांके आदमी भूख और प्याससे व्याकुल होकर इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। न खानेको अन्न है और न शरीर ढकनेको वस्त्र। हा दैव! हमारी यह दशा कब तक बनी रहेगी! ऐसा विचारते-विचारते वे ताजमहल के नीचे फौवारोंके पास आगये। एक-एक चीज की बनावट अनुपम थी। एक-एक वस्तुसे कलाका परिस्फुटन हो रहा था। इतनेमें वे दोनों ताजमहलके अन्दर जाने वाले फाटकके पास आये। इसके बाहर किये गये पच्चीकारीके काम तथा बने हुए बेल-बूटोंको देख कर ये बड़ा आश्चर्य करने लगे। किसीने कहा ये जो बीच-बीच में लाल पत्थर दिखाई दे रहे हैं, इनमें पहले लाल लगे हुए थे जो पठान लुटेरे लूट कर ले भागे। उस समय उनको ख्याल आया हमारे देश में पहले कितनी सम्पत्ति थी! वह अब क्यों नहीं है? क्या अब भी हमारा देश पहलेकी ही तरह समृद्धिशाली हो सकता है? अस्तु। ऐसा विचारते हुए वे लोग उन दो मकबरोंके पास आये, जिनकी याद में आज भी ताजमहल आँसू बहा रहा था। इसी तरह घूम-फिर कर वे लोग घर लौट पड़े।

* * * * *

जबसे केदार और वीरेन्द्र घरसे गये थे, कलाका चित्त कुछ-कुछ उद्विग्न सा हो गया था। घरके किसी भी काममें उसका मन नहीं लगता था। यद्यपि वह अपनी इस मतवाली दशाको छिपानेकी भरपूर चेष्टा करती थी, किन्तु सब व्यर्थ। सास कहती बहू ! तुझे आजकल क्या हो गया जो काम करती हो वही उल्टा ! सासके इस प्रश्न पर कला लज्जासे सिर झुका लेती। पडोसकी कुछ हमजोलियाँ तो उससे ठट्टा करती हुई कह देती-अभी तो महीना भर भी नहीं हुआ-अभीसे यह हाल ! इस वाक्यमे व्यंग भले ही हो किन्तु कलाका हृदय कहता था कि इसीमें तो सत्य झलक रहा है। वह मुस्कुरा कर और अपनेको क्रोधित सी दर्शाती हुई कहती, रहने भी दो-तुमको तो हर घडी हंसी ही सूझती है।

एक दिनकी दुपहरिया थी। बाहर रिम–झिम रिम-झिम मेंह बरस रहा था। सामने आमकी डालीमे बैठे हुए एक निष्ठुर मोरने आवाज दी—पी कहा ? कला अभी-अभी खाना खाकर कुछ देर आराम करनेके लिये लेट गई थी। मोरकी वह आवाज उसने सुनी। हृदय चंचल हो गया। उसके कान खड़े हो गये। फिर वही आवाज आई - पी कहा ? कलाके हृदयमे भी वही आवाज गूंज उठी.— पी कहा ? नेत्रोंसे झर-झर आंसू गिरने लगे। लाख चेष्टा करने पर भी वह अपने को न संभाल सकी। रह-रह कर केदारका हंसता हुआ चेहरा उसके दिमागके सामने खड़ा होकर उससे अठखेलियां करने लगा। कलाको इस समय यदि कोई ऐसा पंख उसे मालूम होता जिससे उड़ कर वह तुरन्त जाकर अपने प्रीतमके पास पहुंच

जाती तो वह उसका जाप करनेमें जरा भी देर न लगाती। कला अपने पर स्वयं ही खिन्न हो गई। वह सोचने लगी-यह मेरी ही गलती है। जाते समय जब उन्होंने मुझसे पूछा था मैं मना कर देती या मैं स्वयं भी साथ हो लेती तो क्या वे इन्कार करते! पर अब क्या हो सकता है! तीर छूट चुका था।

थोड़ी देरमें कला उठी। सामने मेज पर रखा हुआ एक कागज लिया और पत्र लिखने वैठ गई। कलम उठा कर ज्योंही लिखने लगी, कागज पर दो बून्द आँसू गिर गये। उसने धीरेसे अपने आंचलसे आँसू पोंछे और गीले कागजको भी उसी आंचलसे पोंछा। इस समय केदार और वीरेन्द्र उसके लिये साक्षात देवता हो गये थे, जिनका दर्शन होना अत्यन्त कठिन सा प्रतीत हो रहा था। ओह! मनुष्यका हृदय कितनी अज्ञानतासे भरा होता है--प्रेममें वह किस तरह अपने आपको भूल जाता है, यह किसी वियोगीसे पूछना चाहिये। हाड़ और मासके पुतले मनुष्यको प्यार करना यदि वास्तव में देखा जाय तो मनुष्यकी भयङ्कर भूल है। पर मायासे भ्रमित होकर मनुष्य जान बूझकर भी इससे दूर नहीं रह सकता। वास्तवमें यही तो उस परमात्माकी लीला है। अस्तु। कला पत्र लिखने तो बैठ गई, किन्तु एक साथ ही उसके हृदयमें भावोंका समुद्र सा उमड़ आया। सभी बातें अत्यन्त आवश्यक और न छोड़ने लायक प्रतीत होती थीं। क्या लिखूं क्या न लिखूं कला वेसुध हो गई। अन्तको बहुत सोच विचारके बाद यह पत्र लिखा।

हृदयेश्वर !

आप जबसे मेरे पाससे गये हैं, कह नहीं सकती कभी भी आपने इस दासीको याद किया होगा या नहीं, किन्तु मेरे नेत्रोंके आगे तो सर्वदा आपकी पवित्र मूर्ति विद्यमान रहती है। एक पत्र पहुंचा था-आपने पिताजीको भेजा था-उसीसे हृदयका बोझ कुछ हलका हुआ किन्तु दासी पत्रसे भी वञ्चित रही !

आशा है आप प्रसन्न होंगे। वीरेन्द्र बाबूसे मेरा आशीर्वाद कह दीजियेगा। अब ज्यादा दिनों तक मुझे न जलावो, जल्दी दर्शन देकर इस दग्ध हृदयको शान्त करो। हाथ कांप रहा है। आंखोंमें पानी भरा हुआ है। हृदयमें भावोंका समुद्र उमड आ रहा है। यदि लिखने जाऊं तो एक पोथा बन जाय। क्या लिखूं क्या न लिखूं। इतना ही समझिये "यदि मेरा जीवन चाहते हैं तो पत्र देखते ही चले आवें। पत्रोत्तरकी प्रतीक्षामें रहूंगी।

आपकी ही—

'कला'

पत्र लिख कर कलाने इसे कई बार पढ़ा। अन्तमें इसे एक लिफाफेमें बन्द कर ऊपर पता लिखा और पत्र डाकमें भेजनेके लिये इसने नौकरको दिया। ओह ! पत्र पर लिखा हुआ प्रेमास्पदका नाम उस समय कलाको कितना प्रिय लगता था ! वह फिर दीवानी सी कभी बाहर कभी भीतर आने जाने लगी। नौकरको पत्र जल्दी मगर बहुत सावधानीसे डाकमें डालने और लौटनेकी ताकीद इसने कई बार की।

* * *

सायंकालका समय था। भगवान भास्कर अपनी दिन भरकी थकावट दूर करनेके लिये अस्ताचलकी ओर लपके जा रहे थे। चिड़ियोंकी चहचहाहटसे सन्ध्या और भी कलरवमय हो रही थी। वीरेन्द्र किनारी बाजारमें घूमता हुआ नजर इधर उधर दौड़ा रहा था। नहीं मालूम क्यों उसकी आँखे किसीकी खोजमें थीं। उसने बाजारके एक छोरसे दूसरे छोर तक कई चक्कर लगाये, किन्तु अभी तक उसका मनोरथ पूरा नहीं हुआ था। अन्तको वह एक पानकी दूकान के आगे पान खानेके बहाने खड़ा हो गया। सामने मकानमें ऊपर चौतल्लेके बरामदेमें बैठी हुई एक युवती पर उसकी दृष्टि पड़ी। चार आँखे एक हुईं। युवती मुस्कुराई, वीरेन्द्रने भी थोड़ी सी रूखी हंसी हंसी। युवतीने ऊपर आनेका संकेत किया, वीरेन्द्रने लज्जासे सिर झुका लिया।

आजकल कई दिनोंसे केदारको ज्वर हो आया है। इसीलिये वीरेन्द्र अकेले ही सन्ध्या समय घूमने जाया करता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि नवयुवकों पर शोहबत्‌का प्रभाव जितनी जल्दी पडता है उतनी जल्दी अन्य बड़ी उम्र वाले मनुष्यों पर नहीं पड़ता। केदारकी अनुपस्थितिमें वीरेन्द्रका पड़ौसके और दो एक युवकोंसे मेलजाल हो गया था, जिनकी असीम कृपाका ही फल था कि वीरेन्द्र जैसा सच्चरित्र युवक किनारी बाजारकी सैर करने लगा था। वही वीरेन्द्र जो एक दिन वेश्याओंका नाम सुन कर ही नाक भौं सिकोड़ता था, आज स्वयं वेश्यागामी बननेकी चेष्टा कर रहा था। अस्तु।

थोड़ी देरमें एक आदमी आया और वीरेन्द्रसे बोला-बाबूजी चलिये।

वीरेन्द्र पहले तो कुछ चौंका फिर धीरेसे बोला,—कहां ?

ऊपर बाईजी बुलाती हैं।

यद्यपि वीरेन्द्रको वेश्याओंकी ओर ताकते तथा उस हाटमें घूमते हुए कई दिन हो गये थे, किन्तु अभी तक उसको ऊपर जानेका साहस नहीं हुआ था, आज एकाएक बिना परिश्रमके ही एक अगुआ पाकर उसे प्रसन्नता तो हुई जरूर, किन्तु साथ ही भय भी हुआ। इसी लिये उसने कह दिया—नहीं, मैं नहीं जाता। किन्तु वह आदमी भला उसे कब छोड़ने वाला था—बोला,—चलिये न, आगरे की मशहूर बाई है, दो एक गाने सुन कर चले आइयेगा।

वीरेन्द्र भी अब अपने को ज्यादा नहीं संभाल सका। जिस साहसको पैदा करने के लिये वह इतने दिनोंसे व्यर्थ बाजार में घूमता था, आज सहज ही उत्पन्न होते देख उसके आनन्दकी सीमा न रही। बोला-चलो। आगे-आगे वह आदमी चला और पीछे-पीछे वीरेन्द्र सिर झुकाये अपराधी बालककी भांति जाने लगे। वीरेन्द्रका शरीर कांप रहा था। आँखोंके आगे तरह-तरहके रंग दिखलाई देने लगे। सारी देह पसीने से तर हो गई। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह कोई बड़ा भारी पाप करने जा रहा हो। एक बार इच्छा हुई लौट पड़े; किन्तु अब लौटना भी उसके लिये कठिन था। वह ऐसा गहन भाव उसके मूले पड़ गया था जिसे न तो वह निकल ही सकता था और न छुप ही सकता था। इतने में वह आदमी तो नहीं एक

कमरेके किवाड़ खटखटाने लगा। थोड़ी देरमें दरवाजा खुला। एक दासी किवाड़ खोल कर एक अजीब अदाके साथ वीरेन्द्र की ओर झांक कर अन्दर चली गई। आदमीने बिजलीका बटन दबाया, सारा कमरा प्रकाशसे जगमगा उठा। चारों ओर खूब मोटे-मोटे गद्दे बिछे हुए थे और उनके ऊपर बर्फके समान श्वेत रंगकी चादरें पड़ी थीं। खाली जगहमें खूबसूरत रंगबिरंगी कालीनें बिछी थीं, वीरेन्द्र किंकर्त्तव्य विमूढ़ बना इधर उधर ताकने लगा। उस आदमीने कहा-बाबूजी बैठ जाइये।

वीरेन्द्र परम आज्ञाकारी विद्यार्थी की तरह सामने बिछे हुए एक गद्देके ऊपर बैठ गया। उसका मस्तक लज्जा और पश्चात्तापसे झुक-झुक पड़ता था। मनमें ग्लानि हो रही थी कहां—आ गया, पर अब कर भी कुछ नहीं सकता था। बाहर भाग जाने की इच्छा उसे कई बार हुई, किन्तु साहसने उसका साथ नहीं दिया। वह इधर उधर देखने लगा। दीवालों पर कुरुचि एवं विषय वासना पैदा करने वाले चित्र टंगे थे और उन चित्रोंके नीचे चारों दीवालोंमें खूब बड़े-बड़े शीशे टंगे थे, इतनेमें किसीके घुंघरुओंकी ध्वनि उसके कानोंमे पड़ी। थोड़ी देरमें एक युवती सुन्दर गुलाबी रेशमकी साड़ी पहने हुए उसके ठीक सामने एक चित्ताकर्षक मुस्कान तथा अजीब नाजो अन्दाजके साथ वीरेन्द्रके बिल्कुल पास बैठ गई। उसको देखते ही वीरेन्द्रके चेहरेपर हवाइयां उड़ने लगीं। कुछ देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। इसके बाद वह युवती एक अजीब मुस्क्यानके साथ बोली—बाबूजी आप तो नवेली बहूकी तरह बोलते ही नहीं !

वीरेन्द्रका ध्यान टूटा। वह बोला—क्या बताऊं आपके चेहरेने मुझ पर कुछ ऐसा ही जादू कर दिया है। हां! आपका नाम ?

मुझको लोग सुशीलाके नामसे पुकारा करते हैं—युवतीने कहा। इसके बाद फिर दोनों चुप हो गये। वीरेन्द्रने देखा—उस युवती की अवस्था प्रायः ३० से ऊपर होगी। न मालूम क्यों जिस कुरुचिसे प्रेरित होकर वह यहां तक आया था, वह भाव अब उसको देख कर एकाएक बदलने लगा। जिसको वेश्या समझ कर वह यहां तक आया अब न मालूम क्यों वीरेन्द्रको अपनी आत्मज सी ही प्रतीत होने लगी। वह उसकी ओर देखता ही रह गया।

वह युवती भी वीरेन्द्रके भोले और निर्दोष चेहरेको देख कर सन्न रह गई। युवकों से बातें करते हुए उसके जीवनके बत्तीस वर्ष बीत चुके थे किन्तु आज तक ऐसा सज्जन, भोला और निर्दोष युवक उसने नहीं देखा था। वह सोचने लगी—ओह! यह भोला बछड़ा मेरे हाथों कत्ल किया जायगा—यह गुलाब सा चेहरा मेरे हाथों कीचडमे साना जायगा, इसके हृदयकी पवित्रता मेरे ही हाथोंसे पापमय बनेगी, नहीं—कदापि नहीं। मैं लाख व्यभिचारिणी होऊं किन्तु इस देवकुमारको मैं पापकी ओर नहीं घसीटूंगी, मांसाहारी होती हुई भी मैं गोमासका भक्षण नहीं कर सकती। तब क्या करूं इसको फटकार दूं जिससे यह भविष्यमे ऐसी पापमय जगहोंमें प्रवेश न करे। नहीं, मैं फटकार भी नहीं सकती—इनको अपने नेत्रोंसे अलग करना मेरे लिये अत्यन्त कठिन है—प्रभो!

मुझे बल दो, साहस दो जिससे मैं इस देवताकी पवित्रता को स्थिर रखते हुए भी अपना सकूं !

इतनेमें वीरेन्द्रने कलाई पर बँधी हुई घड़ीकी ओर देखा। ग्यारह बज चुके थे। वह खड़ा हुआ और बोला—माफ कीजिये, अभी चलता हूं फिर आऊंगा। युवती कुछ कहे, इसके पहले ही वीरेन्द्र जल्दी से नीचे उतर गया और तेजीसे कदम बढ़ाता हुआ होटलकी ओर चल दिया।

* * *

सुशीला आगरेकी प्रसिद्ध नर्तकी थी। अल्हड़ यौवनके प्रभातमें ही उसने वह नाम कमा लिया था जो वर्षोंके अनुभव से भी अन्य नर्तकियां नहीं कमा पातीं। वह वेश्या तो थी जरूर, किन्तु हृदय वाली। एक वार जो उससे बातें कर लेता वह कभी भी उसे नहीं भूल सकता था। संसारके सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्यको किसी एक ही मनुष्य को अर्पण न कर संसारके सभी तृषित नेत्रोंकी प्यास बुझानेके लिये ही उसने वेश्या कहलानेका कलङ्क जान बूझ कर अपने माथे मढ लिया था। इसी लिये हमें भी यह कहनेका मौका मिल गया कि सुशीला वेश्या थी। उसकी सरल आकृति, भोला स्वभाव तथा दयालु प्रकृतिको देख कर यह स्पष्ट प्रकट हो जाता था कि वह हिन्दू समाजके निर्दय और पाशविक अत्याचारोंका शिकार बनने के कारण ही अपने बेरहम समाजके लिये आंसू बहा रही है।

वीरेन्द्र चला गया, किन्तु उसके साथ ही सुशीलाके चित्तकी शान्ति भी चली गई। उसके घरमें सैकड़ों ऐसे आदमी नित्य आया

करते थे और चले जाते थे, किन्तु किसी के जाने पर कभी भी सुशीला इतनी चंचल नहीं हुई थी, किन्तु आज वीरेन्द्रके जाने पर न मालूम क्यों वह उद्विग्न सी हो गई। किसी भी काममे उसका मन नहीं लगता था। रह रह कर वीरेन्द्रका भोला चेहरा उसके नेत्रोंके आगे नाचने लगा। वह सोचने लगी—क्या वे अब फिर कभी आवेंगे ? यदि आये भी तो मैं किस तरह उन्हे अपना सकती हूं—आह ! कितना सुन्दर चेहरा है—कैसे सुन्दर नेत्र हैं, वोलते हैं मानो फूल झड़ते हैं—वे यहां क्यों आये ? नहीं, वे कभी भी वेश्या-गामी नहीं कहे जा सकते, तव हम लोगोंके डेरों पर जहा केवल झूठी मुहब्बत दर्शाने वाले आते हैं, जहां शराबियों और दुराचारियो के सिवा और किसीके दर्शन नहीं होते, वे क्यों आये ? नहीं ! पुरुष समाज सदा ही स्वार्थी, निष्ठुर और कृतघ्न हुआ करता है, फिर उनके लिये मेरा इतना खिचाव क्यों ? रहने दूं। मुझे किसी वात की कमी है-मैं क्यों व्यर्थ उनके लिये अपने हृदयमे अशान्ति पैदा करूं ? पर क्या करूं ! मैं विवश हूं। लाख चेष्टा करने पर भी मैं उन्हें भुला नहीं सकती। प्रभो ! मुझे कोई उपाय वताओ जिससे मैं उन्हें अपना वना सकूं ? उसे फिर अपनी वेटी कमला की याद आयी। वह सोचने लगी यदि कमला को उनके पैरोंमे अर्पण कर दूं—फिर ख्याल आया नहीं मैं वेश्या हूं, कमला वेश्याकी वेटी है। एक वेश्याकी वेटीके साथ लुक छिप कर व्यभिचार करने वाले लाखों हैं, किन्तु प्रकट रूपमें उसको ग्रहण करने वाला कोई नहीं है। वह रोने लगी। किसी भी प्रकार आंसू नहीं थमते थे। वह सोचने

लगी—ओह हम कितनी नीच, पापी और दुराचारिणी समझी जाती हैं, एक भला आदमी हमारी ओर देखना तक पाप समझता है। तब वह चुप रही। थोड़ी देर बाद फिर विचार आया वीरेन्द्र बाबूसे एक बार मैं यह प्रस्ताव अवश्य करूंगी, नाहीं कर देंगे तो मेरा क्या जायगा। निरादर, अपमान और ताने सुनना तो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। वीरेन्द्र बाबूकी झिडकी तो मेरे लिये दैवी वरदान है, वह सोचती रही। अचानक आवाज आई 'माँ'। सुशीलाने चौंक कर देखा कमला पीछे खड़ी थी। उसने बेटी की ओर देखा। आज कमला उसको कितनी सुन्दर लगती थी। क्योंकि यही एक अवलम्बन था, जिससे वह वीरेन्द्रको अपना सके। उसने प्यार से कहा—'क्यों बेटा!'

'मां! खाना खाओ' कमलाने सरल भावसे कहा।

'आई बेटी' कह कर सुशीला उठ खड़ी हुई।

*   *   *

वीरेन्द्र जिस समय घूमने निकला था उसी समय डाकिया केदारके नामका एक लिफाफा दे गया। केदारका ज्वर आज और दिनोंसे अच्छा था। आज ही उसने पथ्य लिया था। वह खटिया पर लेटा इसी उधेड़ बुनमें था कि कब घर लौटे। रह-रह कर घरकी याद उसे सता रही थी। वह पहले आगरे आनेके लिये जितना उतावला था उससे कहीं ज्यादा उत्सुक हो गया अब घर लौटनेके लिये। इसका मुख्य कारण यह था कि यहाँ की जलवायु उसके लिये अनुकूल नहीं थी। आज उस पत्रको देखकर वह और भी चञ्चल

हो गया। लिफाफेके ऊपर लिखे हुए पतेके अक्षर बड़ी तीव्र किन्तु मधुर वाणीमें कह रहे थे तुम जितने आकुल व्याकुल हो उससे कहीं ज्यादा व्याकुल है कला। वह उठ बैठा। कांपते हुए हाथोंसे उसने—लिफाफा खोला। ऊपर लिखा था—हृदयेश्वर !

वह एक ही सांसमें सम्पूर्ण पत्र पढ़ गया। किन्तु तसल्ली नहीं हुई। फिर पढ़ा—इस प्रकार न मालूम कितनी बार उसने उस प्रेम-पूर्ण पत्रको पढ़ा। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कला सामने बैठकर उसकी ओर बड़ी कुटिल दृष्टिसे देख रही है। मानो उसने कला के प्रति कोई बहुत विश्वासघात किया हो। वह फिर लेट गया—सोचने लगा कलकी गाडीसे कलकत्ते चले जावें—वीरेन्द्रसे अभी कह दूंगा—वह तो राजी हो ही जयगा। छुट्टीके भी तो दो ही दिन बाकी हैं। दो दिन और रहनेसे कौन कोई राज्य मिल रहा है—फिर बिचार आया कहीं वीरेन्द्रको मेरी दुर्बलताका पता तो नहीं लग जायगा। वह हंसेगा—नहीं। हंसने दो मुझे क्या करना है ? वह दृढ़ हो गया।

केदार उठ बैठा। सोचने लगा—वीरेन्द्र क्यों नहीं आया। अब तो बहुत समय हो गया है। उसने कोटकी जेबमें पड़ी हुई घड़ी निकाल कर देखी ११॥ हो गये थे। एक नई चिन्ता सवार हो गई। वीरेन्द्र क्यों नहीं आया ?

इतनेमें किसीके जूतोंकी आवाज सुनाई दी। वीरेन्द्र अन्दर आया। बोला—केदार !

वाह ! भाई आज तुमने क्या किया। घरमे मुझे बीमार छोड़कर अब आ रहे हो—केदारने बड़े गेवसे यह वाक्य कहा। उसका चेहरा